वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७
ISSN 2582-0656
9 772582 065005
विवेक ज्योति
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)
वर्ष ५८ अंक ४
अप्रैल २०२०

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०२०

वर्ष ५८
अंक ४

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

ISSN 2582-0656

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

अप्रैल माह के जयन्ती और त्योहार

०२	रामनवमी
०६	महावीर जयन्ती
०८	हनुमान जयन्ती
२८	शंकराचार्य जयन्ती
२९	रामानुचाजार्य जयन्ती

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
१. श्री राकेश कुमार कनखरे, इन्दौर (म.प्र.)	१०००/-
२. श्रीमती शकुन्तला दुबे, रायपुर (छ.ग.)	१०००/-
३. श्री आशुतोष जोशी, पुणे (महाराष्ट्र)	१०००/-
४. श्री वी.पी. शंखपाल, नासिक (महाराष्ट्र)	११११/-

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामचन्द्र जी का यह छायाचित्र इंटरनेट से लिया गया है।

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५९४. श्री जगदीश नारायण पाण्डेय, नेहरू नगर, भिलाई (छ.ग.)	लाईब्रेरी, शा. महाविद्यालय, भैसमा, जि. - कोरबा (छ.ग.)
५९५. श्री वरुण गोयल, पश्चिम विहार, न्यू दिल्ली	शासकीय महाविद्यालय, सरगांव, जि. - मुंगेली (छ.ग.)
५९६. श्री जय प्रकाश, आवास-विकास कॉलोनी वाराणसी (उ.प्र.)	शासकीय महाविद्यालय, मरवाही, जि. - बिलासपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५८　　　　अप्रैल २०२०　　　　अंक ४

श्रीराम-स्तुतिः

श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गतिः।
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः।।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वे वशे।
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम! त्वमेवाश्रयः।।

– भगवान श्रीराम ही सकल संसार के शरण-स्थल हैं। राम के बिना क्या गति है! राम के द्वारा ही कलियुग के दोषों का नाश किया जाता है। ऐसे श्रीराम के कार्य को नमस्कार है। श्रीराम से काल भी भयभीत रहता है, राम के वश में सभी हैं। श्रीराम में हमारी अखण्ड भक्ति हो। हे राम! एकमात्र तुम्हीं हमारे आश्रय हो।

पुरखों की थाती

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्।।६७६।।

– काम के समान कोई रोग नहीं होता, मोह-भ्रान्ति के जैसा कोई शत्रु नहीं होता, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं होती और ज्ञान के जैसा कोई सुख नहीं होता।

जन्म-मृत्युर्नियत्येको भुनक्त्येकः शुभाशुभम्।
नरकेषु पतत्येकः एको याति परां गतिम्।।६७७।।

– इस संसार में मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है, मरने के बाद अकेला ही परलोक जाता है, अकेला ही अपने भले-बुरे कर्मों के फल भोगता है, अकेला ही नरक में गिरता है और अकेला ही परमगति (आवागमन से मुक्ति) को प्राप्त करता है।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः।।६७८।।

– लक्ष्मीजी (अर्थात् धन) चंचल हैं, प्राण चंचल हैं, जीवन तथा देह भी चंचल अर्थात् नाशवान है। इस परिवर्तनशील संसार में एकमात्र धर्म (सत्य) ही निश्चल अर्थात् स्थिर रहता है।

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्।।६७९।।

– मनुष्य सुनकर ही धर्म का बोध करता है, सुनकर ही दुर्बुद्धि का परित्याग करता है, सुनकर ही परम ज्ञान प्राप्त करता है और सुनकर ही मोक्ष की उपलब्धि करता है।

सम्पादकीय

हे राम तेरा अवतार हुआ

शास्त्र, ऋषि, मुनि, भक्तों की चरितावलियाँ और उनकी अनुभूतियुक्त वाणी साक्षी है कि जब-जब भक्तों पर दुर्जनों के द्वारा अत्याचार हुआ, तब-तब भगवान ने अवतार लेकर अत्याचारियों से उनकी रक्षा की और पुन: शाश्वत धर्म को युगानुरूप स्थापित किया। किसी भक्त-कवि ने लिखा है –

अगणित ऋषियों के प्राण गए, जब धरा पाप से काँप उठी,
जब असुर दलित दल देव-दनुज का क्रन्दन पहुँचा कर्णपुटी।
जब धर्म-धरा-सुर-मुनियों का थल-नभ में हाहाकार हुआ।
तब धर्म, धरा करने रक्षण, हे राम तेरा अवतार हुआ।।

जब भी धर्म-संकट में पड़ा, साधु, सज्जनों पर अधर्मियों द्वारा अत्याचार किया गया, तब-तब विभिन्न रूपों में भगवान को अवतार लेना पड़ा। धर्मजगत का इतिहास साक्षी है कि हरिभक्त प्रह्लाद को मारने के लिए उसके पिता हिरणकश्यप ने क्या-क्या यातनाएँ उन्हें नहीं दी! बीच सभा में श्रीकृष्ण की बहन द्रौपदी को नग्न करने जैसा जघन्य अपराध आज तक किसी राज-दरबार में नहीं हुआ, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण स्वयं वस्त्रावतार लेकर बहन की लाज की रक्षा करते हैं। रावण, मेघनाद आदि राक्षसों द्वारा सन्तों, भक्तों पर किए गए अत्याचार सबको सुविदित हैं। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है कि रावण राक्षसों से कहता है कि –

द्विजभोजन मख होम सराधा।
सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा।। १/१८०/७
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा।
हठि सबही के पंथहिं लागा।। १/१८१/११

इन राक्षसों ने क्या किया?

करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया।।
जेहि बिधि होई धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।।
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं।
नगर गाऊँ पुर आगि लगावहिं।।
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना।
सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना।। १/१८२/४-७

जब विश्वामित्रजी राजा दशरथजी के पास श्रीराम-लक्ष्मण को माँगने के लिए गए, तो उन्होंने कहा था –

असुर समूह सतावहिं मोही।
मैं जाचन आयउँ नृप तोही।।
अनुज समेत देहु रघुनाथा।
निसिचर बध मैं होब सनाथा।। १/२०६/९-१०

बिना दैत्यवृत्ति, अधार्मिक वृत्ति के नाश किए सहज स्वाभाविक शाश्वत धर्म की प्रतिष्ठा नहीं होती। जैसे काम-क्रोध, लोभ, अहंकार के रहते साधक हृदयस्थ द्युतिमान परमेश्वर की अनुभूति नहीं कर सकता, उनमें प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, वैसे ही अनैतिक धर्मविमुख अत्याचारी अधर्मियों के संहार किए बिना भक्तों की, सज्जनों की, धार्मिकों की रक्षा नहीं होती।

प्रश्न उठता है कि भगवान सर्वसमर्थ हैं, वे इच्छामात्र से सम्मुखीन व्यक्ति की अन्तश्चेतना में परिवर्तन कर सकते हैं, उन दानवों को, दुर्जनों को सत्पथ पर, धर्ममार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं, फिर उन्हें रावण, कंसादि के वध की क्यों आवश्यकता पड़ी?

जब अनंग ने देवताओं की बात मानकर कामजित् भगवान शिव पर कुसुमायुध का प्रहार किया, तो शिव की क्रोधाग्नि ने, उनके त्रिनेत्र ने देवताओं के कुछ बोलने के पहले उस कामदेव को भस्म कर दिया –

तब सिवँ तीसर नयन उघारा।
चितवत कामु भयउ जरि छारा।। १/८६/६

भगवान शिव ने सोचा कि इतना दुस्साहस, मुझे अपने पाश में बद्ध करना चाहता है! कोई भी कामदेव की रक्षा नहीं कर सका। जब रम्भा महर्षि विश्वामिश्र को पथभ्रष्ट करने आयी, तो उसे ऋषि की कोप-दृष्टि से पत्थर बनना

पड़ा। वास्तव में ये काम-क्रोधादि की वृत्तियाँ सरलता से, सहजता से नहीं जातीं। इनका समूल नाश ही करना पड़ता है। ये अपनी प्रतिकूल परिस्थिति में कुछ देर के लिये शान्त रहती हैं और साधक की असावधानी, दुर्बलता का बोध होते ही वे उसे दबोचकर पथ-भ्रष्ट कर देती हैं। लेकिन दृढ़ निश्चयी साधक गिरकर पुन: पूर्ण उत्साह के साथ उठकर खड़ा हो जाता है और अपने गन्तव्य चरम लक्ष्य की ओर बढ़ने लगता है। इस यात्रा में साधक को कितनी बार इन दुष्ट इन्द्रियों से पराजित होना पड़ा, कितनी बार तो कितने साधकों के प्राण ही चले गये। कितने जन्म लेने पड़े, कितनी यातनाएँ सहनी पड़ीं, तब जाकर कहीं लक्ष्य की प्राप्ति हुई। लक्ष्य-प्राप्ति के बाद भक्त, साधक परमानन्द में प्रतिष्ठित हो, उन समस्त यातनाओं को भूल जाता है। लेकिन उसकी संघर्ष गाथा अन्य साधकों को प्रेरित करती है। उसे कठिन परिस्थितियों में हतोत्साह से बचाती है और उसमें नई ऊर्जा, शक्ति, नवोत्साह का संचार करती है।

कोई भी महान कार्य बिना बलिदान के, सुसम्पन्न नहीं हुआ। विशाल राजप्रासाद, राजमहल के खड़े होने के लिए कितने नींव की ईटों को मिट्टी के गर्भ में स्वयं को समाहित करना पड़ा। किसी भी देश की स्वतन्त्रता हेतु वहाँ के वीर सेनानियों को बलिदान होना पड़ा। लोक की यह परम्परा है कि सफलता, महानता बलिदान चाहती है, समर्पण चाहती है, उत्सर्ग चाहती है। अत: भगवान के अवतरण पूर्व कितने ऋषि-मुनियों को राक्षसों ने वध कर दिया। कितने तपस्वियों की तपस्या भंग कर दी। उन्हें कष्ट दिया, यातनाएँ दी। तब मुनियों की आर्त प्रार्थना से विगलित हो भगवान अवतरित होकर ऋषियों की, उनके यज्ञ की, उनके द्वारा आचरित शाश्वत धर्म की रक्षा करते हैं।

भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृति के लौकिक और वैदिक परम्परा के मेरुदण्ड हैं, प्राण हैं। एक ओर जहाँ उनकी दिव्य गुणों की, दिव्य स्वरूपों की स्मृति मानवीय अन्त:करण को शुद्ध और चेतना को उच्चस्तर पर लाती है, वहीं उनके कारण हरिभक्ति हेतु राक्षसों द्वारा कितने भक्तों, ऋषि-मुनियों के संहार की बलिदान की स्मृति भी होती है।

हे धर्मधुरन्धर सर्वजीव-सुहृद श्रीराम! आपने ऋषियों की तपस्या और भक्ति से विमुग्ध हो उन पर कृपा की, उनके लोक-मंगलकारी यज्ञों की दानवों से रक्षा कर उसे सम्पूर्ण कराया, रावण-युद्ध के समय मृत वानरों को संजीवित कर स्वधाम प्रदान किया। लेकिन जिस प्रकार भारतीय नारी की अस्मिता की रक्षा के लिए रावण से युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए जटायु को स्वधाम प्रदान किया, वैसे ही शाश्वत धर्म के रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करनेवाले अपने भक्तों को अपने पादारविन्दों में आश्रय प्रदान कीजिए, उन्हें अपना दिव्य लोक प्रदान कीजिए, उन्हें परमधाम प्रदान कीजिए।

हे प्रभु श्रीराम! जैसे आपने पत्थर बनी अहिल्या का उद्धार किया। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की, राक्षस-वध की प्रतिज्ञा की, असुर-वध किया और अन्त में राम-राज्य की, धर्मराज्य की स्थापना की। वैसे ही प्रारब्ध-विवश जीवों के अन्त:करण में स्थित कामादि दानवों का विनाश कर, उनके हृदय में पूर्ण विद्यमान हो जाइए। उनके समस्त दुखों-सन्तापों का नाश कर दीजिए और उन्हें अपना सच्चिदानन्द धाम प्रदान कीजिए, जिसे उन्हें पुन: इस भवाटवी में न भटकना पड़े।

भक्ति-साहित्य साक्षी है की भगवान के पावन नामों ने असंख्य जीवों का उद्धार किया। किसी ने कहा है –

तुमने भक्तों के सन्तापों, असुरों का संहार किया।
तव पावन नाम 'राम' ने जीवों का उद्धार किया।।

गोस्वामी तुलसीदासजी भी लिखते हैं –

राम नाम कर अमित प्रभावा।
संत पुरान उपनिषद गावा।। १/४५/२
राम नाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोक पितु माता।। १/२६/६
राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल।।१/२७/०

नाम कल्पतरु है, जो अभीष्ट फल प्रदान करता है। भगवान का ऐसा पावन नाम समस्त प्राणियों का कल्याण करे। हे प्रभो! जैसे आपके अवतार से अवनी, वन, सुरपुर सर्वत्र सबको परम आनन्द हुआ, सबमें आशा का संचार हुआ। सर्वत्र आपकी वन्दनाचर्ना होने लगी, वैसे ही श्रीरामनवमी आपके अवतरण दिवस पर सम्पूर्ण विश्व को नवालोक, नवप्रकाश, नवोत्साह की अनुभूति हो, नवयुग प्रारम्भ हो। सम्पूर्ण विश्व में प्रेम, सौहार्द, शान्ति सुख का वातावरण हो। अभिनव सर्वसमृद्ध विश्वगुरु भारतवर्ष अपने सर्वोच्च स्थान पर विराजमान हो, आपकी लोकमंगलकारी यश-पताका, आपकी सर्वजीवहिताय शिवमयी लीला सम्पूर्ण विश्वव्यापी होकर सबका मंगल करे, सबको आनन्द प्रदान करे। ○○○

आचार्य शंकर का विलक्षण व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्राध्यापक, संस्कृत महाविद्यालय, रायपुर

आध्यात्मिक सम्पदा में भारतवर्ष निर्विवाद रूप से विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र है। इस पवित्र धराधाम पर आदिकाल से ही ईश्वर से लेकर महापुरुषों तक का प्रयोजनसापेक्ष अवतरण होता रहा है, जिन्होंने तत्कालीन आवश्यकताओं का निराकरण प्रस्तुत कर सनातन धर्मपरम्परा के प्रवाह को अविच्छिन्न बनाये रखने में युगानुरूप अपनी भूमिका निभाई है। इसी परम्परा में एक नाम आचार्य शंकर का है, जिन्होंने अष्टम शताब्दी में अद्वैतवाद की स्थापना करके न केवल समसामयिक अन्य मतावलम्बियों को पराभूत किया, बल्कि आज भी वैश्विक दार्शनिक चिन्तन-धारा में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसमादृत है।

जब भी किसी महापुरुष का धराधाम पर अवतरण होता है, प्राय: उसके पूर्वसंकेत प्राप्त होते देखे गये हैं। आदि शंकराचार्य के माता-पिता आर्यम्बा तथा शिवगुरु को भी भगवान शिव ने स्वप्न में दर्शन देकर पूछा था कि तुमलोग दीर्घायु मूर्ख पुत्र चाहोगे या अल्पायु ज्ञानी और यशस्वी। शिवभक्त दम्पती ने यशस्वी पुत्र की ही कामना व्यक्त की थी। आचार्य शंकर के जन्म के पश्चात् पिता को स्वप्न का स्मरण होने पर उन्होंने ज्योतिषियों से पुत्र की जन्मकुण्डली पर परामर्श कर सबसे यही निष्कर्ष पाया कि जातक एक प्रसिद्ध ज्ञानी के रूप में प्रतिष्ठित होगा, किन्तु आयु अल्प रहेगी।

अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि शंकर का जन्म केरल राज्य के कालडी ग्राम में ७८८ ई. में हुआ था और ८२० ई. में उन्होंने समाधि ली थी। किन्तु ३२ वर्ष का उनका छोटा-सा जीवन व्यक्तित्व और कृतित्व की दृष्टि से नितान्त विलक्षण था। उन्होंने छोटी-सी अवस्था में सर्वशास्त्रनिष्णात होकर धर्मदर्शन के क्षेत्र में ब्रह्मसूत्र की अद्वैतपरक व्याख्या कर एक नयी क्रान्ति को जन्म दिया। लगभग सहस्राब्दी बाद इसके व्यावहारिक उपासनात्मक प्रयोग की कुंजी परमहंस श्रीरामकृष्णदेव से स्वामी विवेकानन्द को प्राप्त हुई और स्वामीजी ने इस अद्वैत 'शिवभाव से जीवसेवा' को जन-जन तक प्रसारित करने में अपने जीवन का सर्वस्व समर्पित कर दिया।

आचार्य शंकर का जीवन आरम्भ से ही सर्वथा विलक्षण था। वे पाँच वर्ष की आयु में उपनयन संस्कार के बाद त्रिचूर गुरुकुल भेजे गये। वहाँ अपनी अद्भुत मेधाविता के कारण उन्होंने अत्यन्त अल्प अवधि में ही वेद-वेदांग एवं अन्य अनेक शास्त्रों का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। उनकी इस प्रतिभा से गुरुजन भी मुग्ध थे। यहाँ से शंकर के व्यक्तित्व की दिव्य विलक्षणताएँ क्रमश: प्रकट होने लगीं, जिनमें कुछ प्रमुख घटनाओं का विहगावलोकन यहाँ अंकित है –

स्वर्ण-आमलक-वृष्टि – गुरुकुल के नियमानुसार एक दिन शंकर अन्य ब्रह्मचारियों के समान भिक्षा के लिए एक दरिद्र विधवा ब्राह्मणी के घर जा पहुँचे। ब्राह्मणी ने अपनी निर्धनता पर दुख करते हुए घर में उपलब्ध मात्र एक सूखा आंवला लाकर उन्हें भेंट किया। बालक शंकर उसके दुख से द्रवित हो गये और वहीं उनके मुख से कनकधारास्तोत्र प्रस्फुटित हुआ। शंकर तो वहाँ से चल पड़े, किन्तु उनके स्तोत्र-पाठ के फलस्वरूप निर्धन ब्राह्मणी के घर पर स्वर्ण-

स्वर्ण-आमलक-वृष्टि

आमलक-वृष्टि हुई और वह धन-सम्पन्न हो गई और ऐसी लोक-धारणा बन गई कि शंकर जिसके घर भिक्षा माँगने चले जाएँ, उसकी सारी विपत्ति दूर हो जाती है। कनकधारास्तोत्र

के सम्बन्ध में आज भी ऐसी मान्यता है कि इसके पाठ से निर्धनता दूर हो जाती है –

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम्।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभागिनो
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः।।[१]

पूर्णा नदी का धारा-परिवर्तन – आचार्य शंकर गुरुकुल से विद्या प्राप्त कर अपने ग्राम लौट आये थे और वहीं घर पर छात्रों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। इसी बीच नदी-स्नान करने गयी माता लम्बी दूरी तय करने में दुर्बलतावश एक दिन रास्ते में गिरकर अचेत हो गईं। माँ की यह दशा देखकर शंकर दुखी हो गये और रात भर अपने कुलदेवता श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते रहे। प्रातः देखनेवाले चकित हो गये कि पूर्णा नदी स्वयं अपनी धारा काटकर ग्राम के बिल्कुल समीप आ गयी थी।

संन्यास-ग्रहण – आचार्य शंकर संन्यास लेना चाहते थे, किन्तु माँ चाहती थीं कि वे गृहस्थ-जीवन व्यतीत करें। दैवयोग से एक दिन नदी-स्नान के समय एक ग्राह ने उनका पैर पकड़ लिया। शंकर उससे पैर छुड़ाने का प्रयत्न कर रहे थे, पर ग्राह बलपूर्वक उन्हें गहरे जल की ओर खींचता चला जा रहा था। तभी शंकर ने किनारे बैठी माता से चीखते हुए कहा, 'माँ, लगता है, मैं अब बच नहीं सकूँगा। इस अन्त समय में तुम मुझे संन्यास की अनुमति दे दो, जिससे संन्यासी बनकर मैं मोक्ष का अधिकारी बन सकूँ।'

सामने ही अपने डूब रहे पुत्र को देखती हुयी कातर माता ने उन्हें अनुमति दे दी। कुछ ही क्षणों बाद शंकर किसी तरह उस ग्राह से स्वयं को मुक्त करने में सफल हो गये। पुत्र को सुरक्षित देख माँ की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा, पर शंकर ने उन्हें संन्यास-अनुमति का ध्यान दिलाया और घर से निकल पड़े।

गुरु गोविन्दपाद से दीक्षा-ग्रहण – आठ वर्ष के शंकर अब विधिवत् संन्यास-दीक्षा लेना चाहते थे। उन्होंने गुरुकुल में आचार्य गोविन्दपाद की बहुत ख्याति सुनी थी, इसलिए उन्हें ही गुरु बनाने का निश्चय किया। उन्हें खोजते हुए जब वे नर्मदा की गुफा में समाधिस्थ गुरु के समीप पहुँचे, तब वर्षों से ध्यानस्थ गुरुदेव की समाधि टूटी और उन्होंने शंकर को शिष्य के रूप में स्वीकार कर ब्रह्मसूत्र की अद्वैतपरक व्याख्या के साथ योगविद्या सिखाना आरम्भ कर दिया।

घट में नर्मदा-जल-संहार – वर्षा ऋतु आने पर नर्मदा में अचानक इतनी बाढ़ आ गयी कि जलधारा गुरु गोविन्दपाद की गुफा तक पहुँच गयी। नदी का वेग देखकर सभी शिष्य चिन्ताकुल हो उठे कि समाधिस्थ गुरु की गुफा को जल-प्लावन से कैसे रोका जाय। तब शंकर ने जल-प्रवाह बढ़ते देख एक घड़े को अभिमन्त्रित कर उसे गुफा-द्वार पर रख दिया। अब गुफा की ओर आता सारा जल उसी घड़े में समाता जा रहा था और गुरु-गुफा सर्वथा सुरक्षित रही। समाधि खुलने के पश्चात् शंकर के उद्यम से प्रसन्न गुरु ने कहा, 'शंकर, महर्षि व्यास ने मुझसे कहा था कि तुम्हारा जो शिष्य नदी की जलराशि को एक घड़े में समेट लेगा, वही मेरे ब्रह्मसूत्र पर समुचित भाष्य लिख सकेगा –

वत्स तं शृणु समस्तविदेको मत्समस्तव भविष्यति शिष्यः।
कुम्भ एव सरितः सकलं यं संहरिष्यति महोल्बणमम्भः।।[२]

तुम्हें योग-सिद्धि के साथ ब्राह्मी स्थिति प्राप्त हो चुकी है। अब तुम्हारे गुरुतर कार्य का समय आ चुका है। इसलिए यहाँ से जाकर काशी विश्वनाथ के दर्शन करो, जिससे आगामी पथ प्रशस्त हो सकेगा।'

काशी में शिव-साक्षात्कार – गुरु के आदेशानुसार शंकर काशी जाकर विश्वनाथ-आराधना के साथ-साथ अद्वैत वेदान्त का अध्यापन करने लगे। एक दिन वे शिष्यों के साथ मध्याह्न कृत्य हेतु गंगातट की ओर जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने चार कुत्तों के साथ एक भयावह चाण्डाल को खड़े देखा।

शंकराचार्य और चाण्डाल

शंकर ने उस चाण्डाल से दूर हटकर रास्ता देने का अनुरोध किया, तब उन्हें घूरते हुए उसने कहा, 'तुम मार्ग से किसे हटा रहे हो? इस चाण्डाल के शरीर को या इसकी आत्मा को? हमने तुम्हारा शास्त्रार्थ सुना है। तुम्हारा सिद्धान्त है कि पूर्ण ब्रह्म सबमें, तुम में और मुझ में एक समान विद्यमान

है। पर तुम मुझे इस तरह दूर भगा रहे हो, मानो मैं तुमसे भिन्न कोई दूसरा हूँ। यदि तुम इस शरीर को हटाना चाहते हो, जो अन्न से बना हुआ है, तो जो मांस-मज्जा तुम्हारे शरीर में है, वही मुझमें भी है। यदि तुम शुद्ध चैतन्य को अलग करना चाहते हो, तो वह तो यहाँ-वहाँ सर्वत्र है।[३]

मुक्तिसुलभ विद्या पाने के बाद भी तुम्हारी लोकसंग्रह की हीन कामना अभी तक बनी हुई है। सचमुच उस माया के महाजाल में महापुरुष भी फँस जाते हैं।

'विद्यामवाप्यापि विमुक्तिपद्यां जागर्ति तुच्छा जनसंग्रहेच्छा।
अहो महान्तोऽपि महेन्द्रजाले मज्जन्ति मायाविवरस्य तस्य।।'[४]

चाण्डाल की बात सुनकर शंकर विस्मित हो उठे। उन्होंने उसे गुरु मानकर प्रणाम करते हुए स्वीकार किया कि ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है, अत: ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई भेद नहीं। इतना सुनकर चाण्डाल के स्थान पर भगवान शिव प्रकट हो गये। उन्होंने शंकर को अद्वैत वेदान्त का प्रचार करने की प्रेरणा दी और आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।

ऋषिकेश में विष्णुविग्रह-प्रतिष्ठा – शंकर शिष्य-मण्डली के साथ काशी से बदरिकाश्रम के लिए चल पड़े। हरिद्वार होते हुए ऋषिकेश के यज्ञेश्वर विष्णु के मन्दिर में उन्होंने भगवान का विग्रह न देखकर पुजारियों से जिज्ञासा की। पता लगा कि चीनी दस्युओं के भय से विग्रह गंगा नदी में डाल दिया गया था। यह सुनकर शंकर गंगा की बलवती धारा में उतर पड़े और विग्रह खोजकर मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा करवाई।

बदरीनाथ में नारायणमूर्ति-प्रतिष्ठा – इसी प्रकार बदरीनारायण की मूर्ति के सम्बन्ध में जब पता चला, तो प्राण-भय की परवाह न करते हुए उन्होंने नारदकुण्ड से भगवान की मूर्ति लाकर मन्दिर में विराजमान करवाया।

तत्पश्चात् शंकर ने बदरिकाश्रम के समीपस्थ व्यास-गुफा में अपने शिष्यों के साथ रहते हुए ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों पर भाष्य लिखा। इसी स्थान पर महर्षि व्यास ने महाभारत की रचना की थी, जहाँ इन्हें प्रस्थानत्रयी के भाष्य-प्रणयन का सुयोग प्राप्त हुआ। इस लेखन-कार्य में लगभग चार वर्ष लगे थे और शंकर का सोलहवाँ वर्ष व्यतीत हो रहा था।

महर्षि व्यास से आशीर्वादलब्धि – शंकर अब बदरीतीर्थ से केदारनाथ और गंगोत्री की यात्रा के लिए निकल पड़े। उत्तरकाशी में एक क्षीणकाय ब्राह्मण ने आकर शंकर से परिचय प्राप्त कर उनसे ब्रह्मसूत्रविषयक प्रश्न पूछा। शंकर ने उनकी जिज्ञासा का समाधान किया। किन्तु ब्राह्मण एक-के-बाद एक सात दिनों तक प्रश्न करते रहे और अन्त में शंकर के उत्तर से सन्तुष्ट होकर अपना महर्षि व्यास का रूप दिखाकर उन्हें अद्वैत मत के संस्थापन में सर्वत्र शास्त्रविजयी होने का आशीर्वाद दिया तथा उनके मृत्युयोग को नष्ट कर आयु में और सोलह वर्षों की वृद्धि कर अन्तर्धान हो गये।

इसके पश्चात् आचार्य शंकर अद्वैत वेदान्त के प्रचार के लिए निकल पड़े। वे त्रिवेणी के तट पर कुमारिल भट्ट से मिले और उनके शिष्य मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित किया और पूरे देश में यात्रा करते हुए अद्वैत वेदान्त मत को प्रतिष्ठित किया।

इस प्रकार ब्रह्मनिष्ठ आचार्य शंकर की देशव्यापी आध्यात्मिक यात्रा और उनके ज्ञानबल से ७२ सम्प्रदायों, विभिन्न धर्मों, ७० से अधिक राज्यों में विखंडित यह देश पूर्णत: सुसंगठित हुआ।

विभिन्न देवताओं के शताधिक मधुर स्तुतियों के प्रणेता आचार्य शंकर ने देश की चार अलग-अलग दिशाओं में चार मठों – बदरीनाथ में ज्योतिष्पीठ, पुरी में गोवर्धनपीठ, द्वारिका में शारदापीठ तथा मैसूर में शृंगेरीपीठ की स्थापना कर भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय संचेतना का धार्मिक स्वरूप प्रतिष्ठित किया, जिसका प्रभाव सदियों बाद आज भी अक्षुण्ण है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. नित्यकर्म पूजा-प्रकाश, पृष्ठ - ३०५, पं. रामभवन जी मिश्र, गीताप्रेस गोरखपुर, **२.** श्रीमच्छङ्करदिग्विजयः, ५-१५८, विद्यारण्य, शृंगेरी मठ, शृंगेरी, १९५६, **३.** आदिशंकराचार्य, जीवन और सन्देश, पृ.३६-३७, डॉ. दशरथ ओझा, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, १९५१, **४.** श्रीमच्छङ्करदिग्विजयः, ६-३२, विद्यारण्य, शृंगेरी मठ, शृंगेरी, १९५६.

ज्ञानी ज्ञानमार्ग पर चलता हुआ सत्य के विषय में सदा 'नेति नेति' (यह नहीं है, यह नहीं है) विचार करता रहता है। ब्रह्म 'यह' नहीं है, 'वह' नहीं है। वह जगत नहीं है, जीव नहीं है। इस प्रकार विचार करते हुए मन स्थिर हो जाता है। फिर वह (मन) लीन हो जाता है और साधक समाधि में मग्न हो जाता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

शिव-ज्ञान से जीव-सेवा

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

१८८४ ई. में किसी समय श्रीरामकृष्ण कमरे में भक्तों से घिरे बैठे हैं। श्रीयुत नरेन्द्रनाथ (परवर्ती काल के स्वामी विवेकानन्द) भी वहाँ उपस्थित हैं। विविध वार्तालाप तथा बीच–बीच में सरल हास-परिहास भी हो रहा है। प्रसंगवश वैष्णव धर्म की बात उठी। उस मत का सारमर्म सब लोगों को संक्षेप में समझाकर श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, ''तीन बातों का पालन करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहने का उपदेश उस मत में है – नाम में रुचि, जीव के प्रति दया और वैष्णव पूजन। जो नाम है, वही ईश्वर है – नाम-नामी को अभिन्न जानकर निरन्तर अनुराग के साथ नाम लेना चाहिए। भक्त और भगवान, कृष्ण और वैष्णव को अभिन्न समझकर साधु-भक्तों की पूजा और वन्दना करनी चाहिए और कृष्ण का ही यह संसार है, ऐसी धारणा हृदय में रखकर सब जीवों पर दया (करनी चाहिए)।'' 'सब जीवों पर दया' कहते ही श्रीरामकृष्ण देव समाधिस्थ हो गये। कुछ क्षणों के अनन्तर अर्धबाह्य दशा में अवस्थित होकर कहने लगे, ''जीव पर दया – जीव पर दया? धत् तेरी, कीटाणुकीट होकर तू जीव पर दया करेगा? दया करनेवाला तू कौन है? नहीं, नहीं, जीव पर दया नहीं, शिव ज्ञान से जीव की सेवा।''

श्रीरामकृष्ण देव की ये बातें सभी ने सुनी थीं, किन्तु उनकी भाव भंगिमा के पश्चात् बाहर आकर नरेन्द्रनाथ ने कहा, ''आज ठाकुर की बात से कैसा अद्भुत प्रकाश दिखाई पड़ा! जिस वेदान्त ज्ञान को लोग शुष्क, कठोर और ममतारहित समझते हैं, उसे भक्ति के साथ सम्मिलित करके कैसे सहज, सरस और मधुर प्रकाश का उन्होंने प्रदर्शन करा दिया!... आज ठाकुर ने भावावेश में जैसा बताया, उससे जान गया कि वन के वेदान्त को घर में लाया जा सकता है, संसार के सभी कार्यों में उसका प्रयोग किया जा सकता है। ... ठाकुर के इस उपदेश से भक्तिपथ में भी विशेष प्रकाश दिखाई पड़ता है। जब तक ईश्वर को सर्वभूतों में नहीं देखा जाता, तब तक यथार्थ भक्ति या पराभक्ति लाभ करना साधक के लिए सम्भव नहीं होता। ...कर्मयोग या राजयोग के अवलम्बन से जो साधक अग्रसर हो रहे हैं, उन्हें भी इस बात से विशेष प्रकाश दिखाई पड़ेगा। ... भगवान् ने यदि अवसर दिया, तो आज जो सुना, इस अद्भुत सत्य का संसार में सर्वत्र प्रचार करूँगा, पण्डित, मूर्ख, धनी, निर्धन, ब्राह्मण, चाण्डाल, सभी को सुनाकर मुग्ध करूँगा।''[१]

'शिव ज्ञान से जीव सेवा' को स्वामी विवेकानन्द जी ने एक मंत्र के रूप में आत्मसात् किया और उसे कार्य में परिणत करके सेवा को मात्र सेवा नहीं, बल्कि पूजा का स्वरूप प्रदान किया। मनुष्य भाव से मनुष्य की सेवा करना तो मानवता तक ही सीमित रह जाती है, पर मनुष्य की ईश्वर-ज्ञान से की गई सेवा, पूजा का स्वरूप ले लेती है। शिव-ज्ञान से सेवा करने से सेव्य और सेवक दोनों में ही देवत्व का प्रदुर्भाव होता है।

आइए, हम सब स्वयं स्वामी विवेकानन्द जी के शब्दों में इस भाव को समझने का प्रयास करें – 'समस्त उपासनाओं का यही धर्म है कि मनुष्य शुद्ध रहे तथा दूसरों के प्रति सदैव भलाई करे। वह मनुष्य जो शिव को निर्धन, दुर्बल तथा रुग्ण व्यक्ति में भी देखता है, वही सचमुच शिव की उपासना करता है, परन्तु यदि वह उन्हें केवल मूर्ति में ही देखता है, तो कहा जा सकता है कि उसकी उपासना अभी नितान्त प्रारम्भिक ही है। यदि किसी मनुष्य ने किसी एक निर्धन मनुष्य की सेवा-शुश्रूषा बिना जाति-पाँति अथवा ऊँच-नीच के भेद-भाव के यह विचार कर की है कि उसमें साक्षात् शिव विराजमान हैं, तो शिव उस मनुष्य से दूसरे

एक मनुष्य की अपेक्षा, जो कि उन्हें केवल मन्दिर में देखता है, अधिक प्रसन्न होंगे।[२]

अब हमारे मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि 'शिव ज्ञान से जीव सेवा' का हम अपने दैनन्दिन जीवन अर्थात् व्यावहारिक जीवन में कैसे प्रयोग करें? इस भाव का सरल उपाय यही है कि हम जिसकी सेवा करें, उसे शिव अर्थात् साक्षात् ईश्वर मानकर सेवा करें। उदाहरणार्थ जब संतान अपने माता-पिता, गुरु-आचार्य आदि की सेवा करें, तो वे उन्हें शिव अर्थात् ईश्वर मानकर ही करें। यहाँ अब एक और प्रश्न उठ सकता है कि जब हम अपने से बड़ों की सेवा करते हैं, तब तो हम उन्हें सरलतापूर्वक ही ईश्वर मानकर सेवा कर सकते हैं, परन्तु जब सेवा बड़ों द्वारा छोटों की की जाय, तब उसे इस भाव में कैसे परिणत किया जाय? परन्तु ऐसी परिस्थितियों के लिए भी वैसा ही सरल व्यवहार होगा। उदाहरणार्थ अध्यापक अपने छात्रों को पढ़ाते समय यह मानें कि वह बाल-गोपालों को पढ़ा रहें हैं। माँ अपने शिशु को शिशु नहीं, बल्कि बाल-गोपाल का लालन-पालन कर रही है, ऐसी धारणा करके सेवा को आध्यात्मिक दिशा दे सकती है। वैद्य रोगी की सेवा को ही नारायण समझा करे। बाढ़ पीड़ित या भूकम्प पीड़ित लोगों की सेवा नर-नारायण मानकर करें, तो उनकी सेवा पूजा में परिवर्तित हो जायेगी।

'ईश्वर: सर्वभूतानाम्[३] – समस्त जीवों में ईश्वर का निवास है। इस प्रकार किसी भी प्रकार की सेवा, किसी भी प्राणी की, किसी भी स्थिति में क्यों न की जाय, वह वास्तव में ईश्वर की ही सेवा होगी। यदि हम उस सेवा को अनासक्त भाव से ईश्वर मानकर करें, तो वह सेवा ईश्वर की ही सेवा होगी। दृष्टि बदल जाते ही सृष्टि बदल जाती है। इस प्रकार हम कोई अलग कार्य नहीं करेंगे, बल्कि हम जिन कार्यों को कर रहे थे, उन्हीं कार्यों को भिन्न दृष्टि से करने का प्रयास करेंगे। कुछ लोगों को यह भाव कठिन प्रतीत हो सकता है, पर यदि आप विचार करके देखें, तो पूजन के अन्य भावों में यह भाव सरलतम लगने लगेगा। जिस प्रकार भक्त पत्थर की मूर्ति में भी अपने ईश्वर के दर्शन करता है, उसके समक्ष प्रार्थना करता है, प्रणाम करता है, उसे भोजन कराता है, उसका शृंगार करता है, उसकी पूजा करता है। अब हम विचार करें कि जब एक निर्जीव माध्यम में ईश्वर की धारणा करना सम्भव है, तो क्या चैतन्य अर्थात् जीवित मनुष्य में ईश्वर की धारणा करना सम्भव नहीं है? यदि इस भाव को कोई पूर्णत: कार्य में परिणत करने में असमर्थ हो, तो भी वे स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा निर्देशित निम्नलिखित विचार को भी ग्रहण कर उपरोक्त भाव का ही अनुसरण करेंगे। स्वामीजी कहते हैं – 'जो व्यक्ति अपने पिता की सेवा करना चाहता है, उसे अपने भाइयों की सेवा सबसे पहले करनी चाहिए, इसी प्रकार जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे उनकी सन्तान की, विश्व के प्राणी मात्र की पहले सेवा करनी चाहिए। शास्त्रों में कहा भी गया है कि जो भगवान के दासों की सेवा करता है, वही भगवान का सर्वश्रेष्ठ दास है। यह बात सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिए।'[४]

स्वामी विवेकानन्द जी के गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द जी कहते हैं – 'ठाकुर ने मुझे चैतन्यमय शिव दिखाया था ! दक्षिणेश्वर में काली मन्दिर में ले जाकर एक दिन दिखलाया – 'यह देख चैतन्यमय शिव!' सचमुच उस दिन मैंने जो देखा! ठाकुर ने मेरे प्राणों में कैसा आनन्द ढाल दिया। फिर स्वामीजी ने दिखाया – जीव-जीव में शिव, जीवन्त शिव! असहाय, दरिद्र, रुग्ण, भूखा, अन्नहीन, वस्त्रहीन, – सब नारायण हैं। स्वामीजी की आँखें ही अलग थीं। सच कहता हूँ – सबको खिलाने से ठाकुर खाते हैं, यह विश्वास मुझमें है, यह मैंने देखा हैं।[५] इस प्रकार हम यह भली-भाँति समझ सकते हैं कि 'शिव-ज्ञान से जीव-सेवा' मात्र एक विचार या भाव नहीं, बल्कि अनुभूति का भी विषय है। परन्तु जब तक हम इस अनुभूति तक न पहुँच जायँ, हमें इस भाव से ही सेवा करनी चाहिए, यही उत्कृष्ट सेवा भाव है।

उपसंहार – विदेश गमन के कुछ दिन पूर्व आबूरोड में स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने एक गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द से कहा था – ''हरि भाई! मैं तुम्हारा तथाकथित धर्म नहीं समझता, इसके बाद मुख पर एक गहन विषाद की छाया लिए हुए तथा भावावेश से काँपते हुए उन्होंने अपना हाथ सीने पर रखते हुए कहना जारी रखा, 'परन्तु मेरा हृदय काफी बड़ा हो गया है। अब मैं दूसरों की पीड़ा में पीड़ा का अनुभव करना सीख गया हूँ। विश्वास करो, मेरे भीतर तीव्र दुख-बोध का जन्म हो गया है।' कहते-कहते उनका कण्ठ भावावेग से रूद्ध हो गया, वे और कुछ कह नहीं पाए, आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।''[६] स्वामी विवेकानन्द जी जब ये बातें कह रहे थे, तब तुरीयानन्दजी यह सोचने लगे कि बुद्ध देव ने भी तो ठीक ऐसा ही अनुभव किया था, और ऐसी ही बातें कहीं थीं। वस्तुत:

एक सेवापरायण व्यक्ति ही ऐसा हृदयवान् हो सकता है। मन में दूसरों के दुख के प्रति तीव्रता जितनी अधिक होगी, वह उतना ही सेवा करने का इच्छुक होगा तथा वह स्वत: सेवा करने को तत्पर हो उठेगा। जिस प्रकार हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तत्पर होते हैं, उसी प्रकार की तत्परता जब हमें दूसरों के लिए हो जाती है, वही सेवा है। सेवापरायण व्यक्ति की सेवा-भावना स्वाभाविक होती है।

जिस प्रकार दाँतों के बीच कुछ फँस जाने पर अथवा दाँतों को किसी प्रकार की असुविधा होने पर जीभ दाँतों की सहायता हेतु स्वत: तत्पर रहती है। कभी-कभी दाँत जीभ को काट भी दे, तो भी जीभ दाँतों की निरन्तर सहायता करती रहती है। उसी प्रकार सेवा करनेवाले को भी सेव्य की सेवा में सदैव तत्पर रहना चाहिए। यदि कभी सेव्य सेवक पर क्रोधित हो जाय या पीड़ा दे, तब भी सेवक को विनम्रता पूर्वक निरन्तर सेवा करते रहनी चाहिए। यदि सेवक को कभी सेवा के लिए विषम परिस्थितियों का भी आलिंगन करना पड़े, तो इसके लिए सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। सेवा में मान-अपमान, यश-अपयश आदि के ऊपर उठकर सदैव सेव्य के कल्याण को प्राथमिकता देनी चाहिए। वेद हमें पूर्ण आश्वस्त करते हुए उद्घोषित करते हैं –

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो
अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तानत्सुकृतो विश्ववेदा
दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः।।[७]

अर्थात् परोपकार तथा परमार्थ के कार्यों में निंदा, लांछन, उपहास आदि का भय नहीं करना चाहिए। ऐसे मनुष्यों की रक्षा स्वयं भगवान करते हैं, जो परोपकार करते हैं। अत: निश्चिन्त होकर लोक-कल्याण में लगे रहना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – 'यह जीवन क्षण स्थायी है, संसार के भोग-विलास की सामग्रियाँ भी क्षण भंगुर हैं। वे ही यथार्थ में जीवित हैं, जो दूसरों के लिए जीवन धारण करते हैं। बाकी लोगों का जीना तो मरने ही के बराबर है।[८] सुभाषित परोपकार के सन्दर्भ में कहते हैं –

परोपकारशून्यस्य धिक् मनुष्यस्य जीवितम्।
जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति।।

अर्थात् परोपकार रहित मानव के जीवन को धिक्कार है। वे पशु धन्य हैं, मरने के बाद जिनका चमड़ा भी उपयोग में आता है।

सेवा का अवसर जीवन का वह अवसर होता है, जिससे हम स्वयं को धन्य कर पाते हैं। इससे हमें मन की शान्ति मिलती है। ऐसे तो सेवा एक श्रेष्ठ कार्य है, परन्तु 'शिव-ज्ञान से जीव सेवा' सर्वश्रेष्ठ है। यह सेवा की वह शैली है, जिसमें सेवा पूजा का स्वरूप ले लेती है। शास्त्रों

में मूर्तिपूजा के द्वारा ईश्वर की आराधना का उल्लेख मिलता है। वेदों ने **मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव** की पुष्टि की परन्तु, इस बार 'शिव-ज्ञान से जीव-सेवा' का उपदेश देकर श्रीरामकृष्ण देव एक नये सेवा-भाव के प्रणेता हुए तथा उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने इस भाव को हमारे व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित करके हमारे प्रत्येक सेवा को आध्यात्मिक दिशा प्रदान की। स्वामीजी अपनी एक कविता की पंक्ति में लिखते हैं –

ब्रह्म और परमाणु-कीट तक, सब भूतों का है आधार
एक प्रेममय, प्रिय, इन सबके चरणों में दो तन-मन वार।
बहु रूपों से खड़े तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश?
व्यर्थ खोज! यह जीव-प्रेम की ही सेवा पाते जगदीश।[९]

OOO

सन्दर्भ - **१.** युगनायक विवेकानन्द /खण्ड-१/पृ. १२४-१२५, **२.** विवेकानन्द साहित्य ५/३८-३९, **३.** गीता १८/६१, **४.** विवेकानन्द साहित्य ५/३९, **५.** स्वामी अखण्डानन्द के सान्निध्य में ५२, **६.** युगनायक विवेकानन्द खण्ड -१/३५५, **७.** ऋग्वेद ऋचा १/१४७/३, **८.** विवेकानन्द साहित्य २/३७१, **९.** विवेकानन्द साहित्य ९/३२३

गीतातत्त्व-चिन्तन (४)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

ब्रह्मविद्या की प्रशंसा, राजविद्या पवित्र और श्रेष्ठ है

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।२।।

इदम् (यह) राजविद्या (राजविद्या) पवित्रम् (अत्यन्त पवित्र) उत्तमम् (श्रेष्ठ) राजगुह्यम् (गोपनीय है) प्रत्यक्षावगमम् (तत्काल फलवाली) धर्म्यम् कर्तुम् (साधन करने में) सुसुखम् (बड़ी सुगम) अव्ययम् (अविनाशी है)।

"यह राजविद्या अत्यन्त पवित्र, श्रेष्ठ, गोपनीय है, तत्काल फलवाली, साधन करने में बड़ी सुगम तथा अविनाशी है।"

सुसुखं कर्तुमव्ययम् – कहते हैं कि यह जो राजविद्या मैं तुझे देने जा रहा हूँ, वह विद्याओं का राजा है। वह है राजगुह्यम् – गोपनीयों का भी राजा। जैसे हम उपनिषद् में पढ़ते हैं, ब्रह्मविद्या क्या है? ब्रह्मविद्या सर्वविद्या प्रतिष्ठा। यह जो ब्रह्मविद्या है, वह सारी विद्याओं की प्रतिष्ठा है, उसका आधार है। जैसाकि मुण्डक उपनिषद में कहा- तां ब्रह्मविद्यां सर्वविद्यां प्रतिष्ठां – यहाँ पर परम्परा बता रहे हैं कि यह ब्रह्मविद्या कहाँ से आयी? ब्रह्मा ने कैसे अपने पुत्र को दी? उस पुत्र ने कैसे अपने पुत्र को यह विद्या प्रदान की। तो यह श्रेष्ठ गोपनीय विद्या है और पवित्रमिदमुत्तमम् – और अत्यन्त पवित्र है। यह स्वयं पवित्र है और पावन कराने वाली विद्या है। एक व्यक्ति स्वयं पवित्र होता है, किन्तु उसमें दूसरों को पावन करने की क्षमता नहीं होती। पर यह विद्या दूसरों को भी पावन करती है। इसीलिए उत्तम है।

प्रत्यक्षावगमम्-और इसका फल प्रत्यक्ष मिलता है। जैसे मैंने यज्ञादि कर्म किया-और भी कोई पुण्य कर्म किया। हो सकता है, इस जीवन में मुझे अपने पुण्यकर्म का फल न भी मिले। कई लोग कहते हैं कि देखिए स्वामीजी! हम तो कितनी पूजा करते हैं, पर उस पूजा का फल तो दिखाई नहीं देता। हमारे जो ये पुण्यकर्म हैं, उनका प्रत्यक्ष फल कई बार दिखाई नहीं देता है। पर यह जो राजविद्या है, उसका तुरन्त फल होता है। राजविद्या यदि मेरे जीवन में आ गई, तो तत्काल उसका फल दिखाई देता है। क्या दिखाई देता है? मैं मुक्त हो गया, बन्धन स्खलित हो गया। राजविद्या जीवन में आई नहीं कि दु:खों का नाश हो जाता है। ये दुख क्यों होते हैं? अज्ञान के कारण, मोह के कारण। अर्जुन के जीवन में विद्या आ गई। उसके जीवन में जो शोक था, वह शोक निकल गया। युद्ध करने के लिए संलग्न हो गया। भगवान ने अर्जुन से पूछा था कि क्या तेरा मोह नष्ट हुआ है?

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।। (१८.७२)

अर्जुन क्या उत्तर देता है –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। (१८.७३)

प्रभु! आपकी कृपा से मेरे सारे सन्देह दूर हो गये, मोह दूर हो गया। अब मैं अपने स्वरूप में स्थित हो गया हूँ। अब आप जैसा कहेंगे, वैसा मैं करूँगा। यही राजविद्या की महिमा है। तुरन्त शोक का नाश करती है। दु:खों का नाश

कर देती है। इसीलिए प्रत्यक्षावगमम् कहा गया है। इसके लिए हमें रूकने की आवश्यकता नहीं है कि फल कब मिलेगा? तत्काल ही वह फल प्राप्त हो जाता है। यह प्रत्यक्ष फल देनेवाली विद्या है। यह जैसे ही जीवन में प्रतिष्ठित हुई कि तत्काल वह ज्ञानरूपी फल लेकर अपना सारा लाभ हमारे समक्ष दिखा देती है। ऐसी यह विद्या है। और कैसी है? धर्म्यम् – माने धर्म इत्यादि जीवन में हम जो देखते हैं। धर्म का क्या अर्थ है? शास्त्रों में जो धर्म की प्रणाली कही गयी है, उसी प्रणाली के अनुरूप ही यह है। और भी कैसी है? सुसुखं कर्तुम् – अर्थात् यह आसानी से करने योग्य है। बाकी अन्य विद्याएँ बड़ी कठिन हैं।

यह विद्या अत्यन्त सरल, अव्यय तथा सनातन है। अब राजयोग का कोई अभ्यास करे, ज्ञानयोग का कोई अभ्यास करे। ये सब बड़े कठिन हैं। मन का शमन करो, मन का दमन करो, तो यह सब बड़ा कठिन कार्य होता है। पर यहाँ पर कहते हैं - सुसुखं - यह विद्या सरलतापूर्वक जीवन में उतारी जा सकती है। अव्ययम् - यह अव्यय है। यह हमेशा बनी रहती है। जैसे हमने सकाम कर्म किया, उसके पीछे हमारी इच्छा थी। उस कर्म का हमें फल मिल गया। फल मिला खत्म हो गया। हमने जो कर्म किया था, वह हमें फल देकर समाप्त हो गया। जैसे हम जो विद्या पढ़ते हैं, यदि उस विद्या का अभ्यास न करें, तो उस विद्या को हम भूल जाते हैं। विद्या का अभ्यास न करो, तो विद्या समाप्त हो जाती है। पर अगर राजविद्या एक बार प्राप्त हो गयी, तो कभी विस्मृत नहीं होती। वह अव्यय है। उसका फल चिरन्तन है, सनातन है। वह ऐसी विद्या है, जिसे हम कभी भूल ही नहीं सकते। इसीलिए कहा कि वह अव्यय फल देने वाली है। अत: अर्जुन! ऐसी विद्या का मैं तेरे प्रति उपदेश करूँगा, ऐसा भगवान कहते हैं।

प्रथम इन दो श्लोकों में भगवान ने बता दिया कि वे क्या बताना चाहते हैं। यह राजविद्या है, राजगुरु है और पवित्र है। अत्यन्त उत्तम है और उत्तम होने के कारण इसका फल प्रत्यक्ष मिलता है। यह धर्म्य है, सुसुखं कर्तुं है। उसका अभ्यास सरलतापूर्वक किया जा सकता है और अव्यय है। उसका फल कभी नष्ट नहीं होता है। यह विद्या कभी नष्ट नहीं होती है। यदि यह व्यक्ति के जीवन में एक बार आ जाए, तो वह उसे भूलता नहीं है। ऐसा कहकर तीसरे श्लोक में कहते हैं कि देखो, जो मेरे इस वचन पर श्रद्धा नहीं रखते हैं, उनकी क्या दुर्गति होती है –

श्रद्धाविरहित मनुष्य ईश्वर की खोज नहीं करते

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।।३।।

परन्तप (हे परन्तप!) अस्य (इस) धर्मस्य (धर्म में) अश्रद्दधाना: (विश्वास न करने वाले) पुरुषा: (लोग) माम् (मुझको) अप्राप्य (न पा कर) मृत्युसंसार वर्त्मनि (मृत्यु संसारचक्र में) निवर्तन्ते (फँसे रहते हैं)।

"हे परन्तप ! इस धर्म पर विश्वास न करनेवाले लोग मुझको न पा कर मृत्यु संसारचक्र में फँसे रहते हैं।"

अर्जुन के मन में प्रश्न उठा कि महाराज, आप कहते हैं कि इस विज्ञान के ज्ञान की कितनी महिमा है! फिर यह भी कहते हैं कि सुसुखं कर्तुम्, इसका अभ्यास करना बहुत सरल है। तो फिर सभी मनुष्य इसका अभ्यास क्यों नहीं करते? तब प्रभु कहते हैं, उनकी श्रद्धा हो तब न ! क्या करें? श्रद्धा नहीं है। इसीलिए मनुष्य उस ओर जाता ही नहीं हैं। जिसकी श्रद्धा नहीं है, तो फिर उसका क्या होता है? अस्य धर्मस्य - जो इस धर्म में श्रद्धारहित हैं, तो उनका क्या होता है? अप्राप्य मां निवर्तन्ते - मुझको न जानकर, मृत्युसंसारवर्त्मनि - ये मृत्यु संसारचक्र में भ्रमण करते रहते हैं। जिनकी श्रद्धा इस विषय पर नहीं है, वे चक्कर लगाते रहते हैं। यहाँ पर जो कटाक्ष है, वह थोड़ा सूक्ष्म कटाक्ष है। किस पर कटाक्ष है? केवल यज्ञादि कर्म करने वालों पर, पूर्वमीमांसकों पर। यदि आप स्मरण करें, तो देखेंगे कि वेद के दो भाग होते हैं। एक कर्मकाण्ड और दूसरा ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड को कहते हैं पूर्वमीमांसा और ज्ञानकाण्ड को कहते हैं उत्तरमीमांसा। पूर्वमीमांसक केवल यज्ञ पर जोर देते हैं। यज्ञ ही करणीय हैं। क्यों? यज्ञ के माध्यम से हमें मरने के पश्चात् स्वर्ग मिलेगा। और जब तक हम जीवित हैं, तब तक हमारा यह लोक सुख से भरा रहेगा। तो वे लोग इस लोक में सुख प्राप्त करने के लिए, परलोक में सुख प्राप्त करने के लिए यज्ञ करते हैं। और इसी को यज्ञ का लक्ष्य मानते हैं। मानव जीवन का इससे बढ़कर उनके पास और कोई लक्ष्य नहीं है कि मरने के बाद हमें स्वर्ग प्राप्त हो। यह कर्मकाण्डी, पूर्वमीमांसक और उत्तरमीमांसक या वेदान्ती क्या हैं? ज्ञानकाण्डी क्या है? ज्ञानकाण्डी को वेदान्ती भी कहते हैं। ज्ञानकाण्डी कहता है - अरे, उस स्वर्ग में क्या धरा है?

स्वर्ग में भला कितने दिन रहोगे? तुम कर्मों के माध्यम से स्वर्ग प्राप्त करते हो, तो कर्म जैसे सीमित हैं, उसी प्रकार उसका फल भी सीमित है। ठीक है तुमने यज्ञादि कर्म किये, पुण्यकर्म किये, तुम्हे स्वर्ग मिल गया। पर इस स्वर्ग में कब तक रहोगे? अनन्तकाल तक तो नहीं रह सकते। कर्म का फल उसी प्रकार क्षणिक होता है, जैसे कर्म अपने आप में क्षणिक होता है। इसलिए तुम स्वर्ग से फिर से पतित होओगे। फिर आवागमन के चक्कर में पड़ोगे। तो यहाँ पर वही कटाक्ष है।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते - वह भी आदमी है। धर्म के रास्ते चला है। परन्तु ईश्वरतत्त्व की ओर उतना उन्मुख नहीं है। वह स्वर्ग की कामना करता है। जिस समय गीता लिखी गयी, उस समय वेदों में कर्मकाण्ड का बहुत जोर था। ऐसा लगता है कि महाभारत में कर्मकाण्ड पर बहुत जोर दिया जाता रहा हो। इसीलिए यज्ञों पर थोड़ा-सा कटाक्ष करते हैं। गीता में और उसी प्रकार भागवत में भी कटाक्ष है। आप पढ़ते हैं कि जब नन्दबाबा ने इन्द्र की पूजा के लिए, इन्द्र के लिए यज्ञ का आयोजन किया, तो पहली बार इन्द्र-पूजा का विरोध भगवान श्रीकृष्ण करते हैं। कहते हैं, बाबा इसमें क्या रखा है? जो देवता दिखाई नहीं देते, उनकी पूजा के निमित्त हम यज्ञादि क्यों करें? हमारे सामने यह जो गिरिराज गोवर्धन पहाड़ है, उसकी पूजा क्यों न करें? कथा के अनुसार तब गोवर्धन को उठा लेते हैं। इस प्रकार प्रभु श्रीकृष्ण यह दर्शा देना चाहते हैं कि जो केवल कर्मकाण्ड में लिप्त रहते हैं, मैंने जो तत्वज्ञान की और अपने स्वरूप की बात कही है, उसमें उनकी श्रद्धा नहीं रहती है। मुझे प्राप्त करने का तो बहुत सरल रास्ता है, परन्तु उन कर्मकाण्डियों की मति उस ओर नहीं झुकती है। तो ये लोग मुझे न पाकर वापस लौटते हैं और इस वर्त्म में, इस पथ में, इस मार्ग में चक्कर खाते हुए घूमते रहते हैं। इसके बाद भगवान ने क्या कहा? वे कहते हैं, अर्जुन! अब तुम मेरा ऐश्वर्य सुनो कि मैं कैसा हूँ? अब वे अपने स्वरूप का उद्‌घाटन करते हैं। **(क्रमशः)**

साक्षर बनो, राक्षस नहीं

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

अद्वैत दर्शन के प्रतिष्ठाता आदि शंकराचार्य असाधारण प्रतिभा के धनी थे। बताया जाता है कि एक हजार व्यक्तियों द्वारा उन्हें एक साथ प्रश्न करने पर सारे प्रश्न उनके स्मृति-पटल पर अंकित होकर एक-एक करके सबका उत्तर दे सकते थे। इस अद्‌भुत क्षमता के कारण उन्हें एक श्रुतिधर उपाधि से विभूषित किया गया था। एक बार एक व्यक्ति ने उनसे प्रश्न किया - "पुराणों में देवताओं और राक्षसों के युद्ध का वर्णन हमें पढ़ने को मिलता है। क्या सचमुच पहले राक्षस थे या कथा-कहानियों में लिखा होने के कारण हम उस पर विश्वास कर लें।"

शंकराचार्यजी ने उत्तर दिया, "संस्कृत में पढ़े-लिखों के लिये 'साक्षरा:' शब्द प्रयुक्त होता है। इसे उलटी ओर से पढ़ें, तो यह शब्द राक्षसा हो जाता है। साक्षर शब्द का अर्थ – अक्षर-ज्ञान या जो पढ़ा लिखा हो – होता है, ऐसा माना जाता है। राक्षस का अर्थ है, जो सुसंस्कृत न हो या दूसरों के हित की ओर ध्यान न देकर जो स्वेच्छाचारिता का व्यवहार करता हो। असत्य, अनीति, अन्याय, अनाचार, अत्याचार आदि अवगुणों का अवलम्बन करनेवालों को राक्षस की संज्ञा दी जा सकती है। जहाँ तक राक्षसों के अस्तित्व का प्रश्न है, पुराणों पर हमें अकारण अविश्वास नहीं करना चाहिए। वेद-पुराण हमारी धरोहर हैं। सृष्टि-रचना के समय विधाता ने देवताओं, ऋषि-मुनियों के अलावा यक्ष, गन्धर्व, राक्षस आदि को भी उत्पन्न किया। राक्षसों का एक पर्याय दैत्य है। कश्यप की पत्नी अदिति की सन्तान होने के कारण उन्हें दैत्य कहा गया।

सारे विकारों या दोषों की जड़ अविद्या है। अविद्या का अर्थ है - साक्षर-सुसंस्कृत न होना। चेतना में जड़ता आना अविद्या है। लोभ, मोह, दम्भ, स्वार्थ आदि कुविचार अविद्या के कारण उत्पन्न होते हैं। प्रमाद, दुष्टता, हिंसा, नृशंसता आदि राक्षसपन के द्योतक हैं। मनुष्य को अपने मन में कुत्सित विचारों और पाशविक प्रवृत्तियों को उभरने नहीं देना चाहिए। ○○○

ऋग्वेद में लोक-जीवन की झाँकी

प्रवेश सक्सेना, दिल्ली

विश्व के प्राचीन ग्रंथ में लोक-जीवन के विभिन्न चित्रों को देखना अपने आप में एक रोचक अनुभव है। प्रारम्भ से लोक और वेद को कुछ इस तरह परस्पर विरोधी रूप में देखा गया है कि इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के 'लोकत्व' की उपेक्षा हो गई है। पर हमें स्वीकार करना होगा कि किसी भी शिष्ट साहित्य की नींव लोक-साहित्य की भूमि पर आधारित रहती है। जहाँ तक ऋग्वेद का प्रश्न है, वहाँ तो नींव की ही बात नहीं, अपितु लोक साहित्य व शिष्ट-साहित्य के समानान्तर लोक-संस्कृति के विविध आयाम भी प्रस्फुटित हुए हैं। शिष्टजीवन के रंगों के साथ-साथ लोक-जीवन के रंग भी खिले हुए हैं।

लोक जीवन का दर्शन अभिचारों, लोकगाथाओं, संस्कारों, पहेलियों आदि में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त क्रीड़ाओं तथा कलाओं में भी वह अभिव्यक्ति पाता है। कहना न होगा कि इन सभी के विषय में प्रभूत सामग्री हमें ऋग्वेद में मिलती है। लोक-जीवन के सुख-दुख, इच्छाएँ-आकांक्षाएँ, सपने बिना किसी औपचारिक साज-सज्जा के सर्वथा स्वाभाविक सहज-सरल रूप में प्राप्त होते हैं।

शकुनापशकुन – लोक-जीवन की बात हो, तो शकुन-अपशकुन (हिन्दी में शगुन-अपशगुन) की बात अवश्य आती है। ऋग्वेद में 'शंकुत' सूक्त (२/४२,४३) है, जहाँ पक्षी (कपिंजल नामक) को मंगलवाणी बोलने को कहा गया है – **'सुमंगलश्च शकुने भवासि।'**। (२.४२.१)

वास्तव में ऋग्वेद से आधुनिक युग तक चले आए 'शगुनों' के मूल में ऐसे ही मंत्र हैं। शुभसूचक संकेत पक्षी के स्थान-विशेष पर बैठकर बोलने से गृहीत किए जाते रहे हैं, तभी वही 'नाम' उन्हें दे दिया गया है। ऋषि कामना करता है –

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां
सुमंगलो भद्रवादी शकुन्ते।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः।।

अर्थात् हे पक्षी! कल्याणकारक और कल्याणमय वचनों को बोलनेवाला तू घरों की दाहिनी दिशा में बैठकर बोल। हम पर कोई चोर प्रभुत्व न करे, पाप से युक्त वचनों को बोलनेवाला भी हम पर शासन न करे, हम उत्तम पुत्र-पुत्रों से युक्त होकर संसद् में बोलें।

हम सब जानते हैं 'लोक' की इच्छा, आकांक्षा व सपनों का आश्रय होता है 'घर'। उस 'घर' के भद्र को चाहना स्वाभाविक इच्छा है तथा कई प्रकार के शकुन-विचार इसी तरह मन में दृढ़ता से जम जाते हैं कि वे उसकी संस्कृति का हिस्सा बन जाते हैं। यही कारण है 'लोक-जीवन' मंगल की चाहना से युक्त होकर कह उठता है – **विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद**। (ऋग्वेद, २.४३.२)।

इन्हें मात्र अंधविश्वास कहकर निरस्त करना संभव नहीं, क्योंकि आधुनिकतम मनुष्य, २१वीं सदी का मनुष्य भी कहीं-न-कहीं ऐसी चीजों से जुड़ा हुआ है। कहीं १३ की संख्या दुर्भाग्य-सूचक है, तो कहीं 'टच वुड' कहकर 'नजर न लगे', जैसी बातें मिलती हैं। कहीं 'कौए' के घर की छत पर बैठकर 'काँव-काँव' से अतिथि के आने का संदेश मिलता है, तो कहीं बिल्ली के रास्ता काट जाने का भय। 'लोकत्व' के चिह्न ऋग्वेद में मिलना विस्मयकारी है।

विवाह – विवाह मनुष्य के जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। अतः हर संस्कृति में उससे संबद्ध रीति-रिवाज को मान्यताएँ मिलती ही हैं। गृह्यसूत्रों में या स्मृतिग्रंथों में, षोडश संस्कारों में विवाह-संस्कार भी परिगणित हुआ है। ऋग्वेद में, 'संस्कार' शब्द का प्रयोग नहीं है। ऋग्वेद का १०.८५.१-४७ ऋचाओं का एक समग्र सूक्त विवाह विषयक है। इसके मंत्र आज तक विवाह विधि में प्रयुक्त होते हैं। विवाह सम्बन्धी कई प्रथाओं व परम्पराओं का उल्लेख यहाँ हुआ है। विवाह विधि में 'अग्निदक्षिणा' महत्त्वपूर्ण है। वधू के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करता हुआ वह कहता है – 'विदाई के समय (उन लोगों ने) हे अग्नि! सूर्या के द्वारा तुम्हारी प्रदक्षिणा कराई। हे अग्नि! तुम पुनः पति को संतति सहित पत्नी प्रदान करो।' एक ओर तो यह धार्मिक विधि प्रतीत होती है, तो दूसरी ओर विभिन्न देशों की मिलती-जुलती प्रथाओं के समान जान पड़ती है। एक प्रकार से कहीं-न-कहीं 'अभिचार' इसमें जुड़ा है। यहाँ यह भी द्रष्टव्य

है कि इस सूक्त की ऋषि सूर्या सावित्री है। प्रारम्भ से लेकर आज तक गर्भाधान, विवाहादि के कृत्यों से महिलाएँ जुड़ी रहती हैं। इन कृत्यों में जनपदधर्म व ग्रामधर्म को मान्यता प्राप्त रहती थी। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१.५.१.) में विवाह के प्रसंग में कहा गया है – **अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान् विवाहे प्रतीयात्।**'

विवाह में गाए जानेवाले गीतों (बन्ना-बन्नी) का उल्लेख भी यहाँ है। लोकगीतों में जच्चाएँ तथा बन्ने-बन्नियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सूक्त की ऋषिका सूर्या सावित्री ने पति-पत्नी को समानाधिकार दिए हैं तथा दाम्पत्य सम्बन्धों को पुरुषमात्र नहीं, स्त्री के दृष्टिकोण से समझने-समझाने की कोशिश की है। एक स्त्री ऋषि ही 'पति के परिवार' में स्त्री को सम्राज्ञी का पद दिलवा सकती है (ऋ १०.८५.४६)। इस सूक्त में वधू का स्वागत 'सुमंगली' के रूप में होता है (१०.८५.३३)। पति भी पत्नी के लिए दीर्घायु चाहता है, यहाँ पत्नी पति को शतायु चाहती है (१०.८५.३६ तथा ३९)। विवाह-संस्कार में प्रयुक्त इन मंत्रों से एक ओर स्त्री की सामाजिक दशा का पता चलता है, तो दूसरी ओर इन कृत्यों में उसकी आवश्यक भागीदारी को दशार्या गया है। बोधायन जैसे गृह्यसूत्रकार ने 'पितमेधसूत्र' (१.१२.६) में स्पष्ट कहा है – **'यच्चात्र स्त्रियः आहुस्तत्कुर्वन्ति'**। अर्थात् (गर्भाधान, विवाह तथा) श्राद्ध कर्मादि में स्त्रियों का मत ही स्वीकृत होता था। कमोबेश यह स्थिति आज भी है।

गर्भसंरक्षण – गर्भाधान, विवाह, श्राद्धकर्म से संबंधित सामग्री प्रभूत रूप से उपलब्ध है। यही नहीं, इन सबसे संबद्ध परम्पराओं का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में उल्लेख है। ऋग्वेद के कुछ सूक्त एवं ऋचाओं में गृह्यसूत्रों में वर्णित परम्पराओं के मूल देखे जा सकते हैं। ऋग्वेद के १०.१८३-१८४ सूक्त गर्भाधान से संपृक्त हैं। इन मंत्रों में 'पुत्रकामा' पत्नी के लिए शुभकामनाएँ हैं (१०.१८३.२) तथा त्वष्टा देव से 'गर्भ' में शिशु की रचना करने की प्रार्थना है (१०.१.८४.१)। यही नहीं, सिनीवालि सरस्वती तथा अश्विनदेवों से गर्भ-संरक्षण की प्रार्थनाएँ हैं (१०.१८४.२)। घर-परिवार में बच्चे का जन्म आनन्द का अवसर होता है, पर इस आनन्द के क्षण के घटित होने में कई बार बाधाएँ आ जाती हैं। ये बाधाएँ कभी किसी के 'दृष्टिदोष' से अथवा रोग या दुष्टात्मा के कारण आती हैं, जिनसे 'गर्भपात' हो जाता है। वैसे भी जो वस्तु मूल्यवान लगती है, उसके खोने, छिन जाने की शंकाएँ, आशंकाएँ या भय रहते हैं। अतः मनोवैज्ञानिक समाधान इसी में सूझता है कि उसकी सुरक्षा के लिये प्रार्थनाएँ कर लें। लोक-जीवन में वृद्ध माताएँ प्रायः आज तक गर्भिणी स्त्री को गर्भरक्षण के लिये टोने-टोटके बताती रहती हैं। ये सब पढ़े-लिखे लोग भी भले ही चिकित्सकीय सहायता ले रहे हों, तब भी उन्हें मानने में भलाई समझते हैं। ऋग्वेद का १०.१६२ सूक्त एक ऐसा सूक्त है, जिसका विषय है 'गर्भरक्षा'। प्रथम मंत्र ही इस प्रकार की बाधा को दूर करने की बात कहता है –

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये।।

(ऋ, १०.१६२.१)

अर्थात् 'वेदमंत्रों के साथ एकमत संतुष्ट होकर राक्षसों का हंता अग्नि यहाँ से इस शरीर से समस्त बाधा दूर करे, जो रोग दुर्नाम (रोग) तेरे गर्भ या योनिस्थान में गुप्त रूप से रहता है।' रोग के अतिरिक्त दुष्टात्माएँ भी तीन महीने या दस मास के गर्भ का नाश कर देती हैं अथवा नवजात को भी मार देती हैं, उन सबका नाश करने की शपथ है – **'तमितो नाशयामसि'**। ऋग्वेद १०.१६२.३-६।

गर्भघाती राक्षसों का नाशक यह सूक्त 'लोक-जीवन' की झाँकी प्रस्तुत करने में सक्षम है।

मृतक संस्कार – ऋग्वेद के दशम मंडल के कई सूक्त (१४,१६,१८) मृतक से सम्बन्धित हैं। गृह्यमंत्रों के साक्ष्य पर कह सकते हैं कि इनमें से कई ऋचाएँ मृतक संस्कार के समय प्रयुक्त होती थीं। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद का (१०.१८) मृत्युसूक्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। मृत्यु से जुड़े विभिन्न प्राचीन लोकाचारों का उल्लेख यहाँ हुआ है। मृत से विदा लेते समय मानव-हृदय में उठनेवाली भावनाओं से ही विविध संस्कार अस्तित्व में आए होंगे तथा उन संस्कारों के अनुरूप विविध स्तुतियों की रचनाएँ भी तभी हुई होंगी। इन स्तुतियों में ही बाद के गृह्यसूत्रों में वर्णित प्रथाओं का मूल खोजा जा सकता है। एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा –

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिऽसंबभूथ।।

(ऋ.१०.१८.८)

अर्थात हे नारी! तू जीवित लोगों का विचार करके यहाँ से उठ तेरा पति मरा हुआ है। इसके पास तुम व्यर्थ सोई

है, इधर आओ। पाणिग्रहण करनेवाला, जो तुम्हें उठा रहा है, उसकी पत्नी बनो। यह तुम्हारा पति हुआ, इसे स्वीकारो। स्पष्ट ही यह मंत्र 'मृतक' के भाई द्वारा बोला जा रहा है तथा पति की मृत्यु के बाद देवर (द्वितीय वर) द्वारा मृतक की पत्नी को स्वीकार करने की बात है। यह प्रथा आज भी कई क्षेत्रों में मिलती है।

प्रहेलिका – लोक-साहित्य का एक अन्य अंग है – प्रहेलिका, जो हिन्दी में पहेली और अंग्रजों में 'रिडल' नाम से जानी जाती है। वात्स्यायन ने तो इसे ६४ कलाओं में से एक माना है। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि जो पहेली २१वीं सदी के आधुनिकतम युग में भी लोकप्रिय है, वह चिर-प्राचीन ऋग्वेद में भी उपलब्ध है। आज पहेली ज्ञानवर्धन व मनोरंजन के साथ-साथ धनार्जन का साधन भी है। अनेक क्विज-कण्टेस्ट इसी के अन्तर्गत आते हैं। 'कौन बनेगा करोड़पति' जैसे कार्यक्रम भी एक प्रकार के प्रहेलिकात्मक कार्यक्रम ही कहे जाएँगे। ऋग्वेद के ऋषि अधिदैवत, अधिभूत, अध्यात्म रहस्यों को प्रहेलिकात्मक शैली में प्रस्तुत करते हैं। कुछ प्रस्फुट प्रहेलिकाएँ तो कुछ सम्पूर्ण सूक्तों में प्रहेलिकात्मक शैली के दर्शन ऋग्वेद में होते हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों से ज्ञात होता है कि अश्वमेध और दशरात्र के अवसरों पर ऐसी प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती थीं, जिनमें उपस्थित ब्राह्मणों से पहेली पूछी जाती थी। 'ब्रह्मोद्य' नाम था उस पहेली का। स्तुतियों के मध्य में भी जब-तब पहेलियाँ आती रहती हैं। पहेली के अन्त में कहीं-कहीं 'पंडित होय सो भेद बतावै' की तरह की चुनौती भी रहती है। जो 'चुनौती' स्वीकार कर सही उत्तर दे देता था, उस विजयी व्यक्ति को कवि या विप्र की उपाधि दी जाती थी। ऋग्वेद में बहुधा ऐसी चुनौतियाँ हैं – **'इह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत क इमं वो निण्यमाचिकते'**। अर्थात् जो यह भेद जानता हो, वह बोले। तुममें से कौन इस गुप्त रहस्य को जानता है?

प्रहेलिकात्मक सूक्तों में दो बहुत प्रसिद्ध हैं – प्रथम मंडल का १६४वाँ सूक्त, जिसमें ५२ ऋचाएँ हैं। अष्टम मंडल का २९ सूक्त भी बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें १० ऋचाएँ हैं। प्रथम मंडल के १६४वें सूक्त का दार्शनिक महत्त्व भी है। इस सूक्त की एक प्रसिद्ध ऋचा में सौर वर्ष के बारह मासों तथा ७२० अहोरात्र का वर्णन है –

'द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्चतस्तथुः ।।'

(ऋग्वेद १.१.६४.११)

अर्थात् ऋतु का बारह अरों (डंडों) वाला चक्र स्वर्ग के चारों ओर घूमता है और कभी पुराना नहीं होता है। हे अग्नि! इसी में स्त्री-पुरुष ७२० संततियाँ रहती हैं। इस पहेली को लोक में यों देखा जाता है –

एक संदूक जिसमें बारह खाने।
बारह खानों में तीस-तीस दाने।।

हिन्दी भाषा में कबीर की उलटवासियाँ प्रसिद्ध हैं, जैसे 'जल बिच मीन प्यासी' इसका मूल भी ऋग्वेद के वरुणसूक्त के निम्नलिखित मंत्र में पाया जा सकता है –

'अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।'

'जल के मध्य तृष्णा ने घेर लिया'। यहाँ 'तृष्णा' के विभिन्न अर्थ लेकर समस्या का समाधान किया जा सकता है। असीमभोगेच्छुक प्रचुर धनलाभ में भी अतृप्त रहता है अथवा समुद्र का लवणयुक्त जल भी प्यास नहीं बुझाता।

लोकोक्तियाँ 'लोक' शब्द का अर्थ ही प्रकाशित होना या प्रकाशित करना है। 'लोक' का अर्थ लोक में रहनेवाले प्राणी और यहाँ दृश्यमान पदार्थ होते हैं। पर जब 'लोक' को 'शिष्ट' से विलग करते हैं, तो 'लोक' जनसामान्य का वाचक बन जाता है। लोक के अनुभव, अनुभूतियाँ, परम्पराएँ सब शिष्टों से अलग हो सकते हैं, पर उन्हें (शिष्टों को) भी बहुधा 'लोक' को मान्यता देनी ही पड़ती है। हाँ, लोकोत्तर जनों की बात और होती है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि 'लोक' में परिवर्तन भी होता है, गतिशीलता और निरन्तरता भी बनी रहती है। गतिशीलता और निरन्तरता का अर्थ है कि पहले की मान्यताओं में नए-नए अर्थ समाते जाते हैं। लोकस्वीकृति का अर्थ इसीलिए यही है कि लोक के दैनन्दिन व्यवहार में आकर वे अर्थ जीवन्त होते जाते हैं। फिर भी बहुत कुछ ऐसा होता है, जो सार्वभौमिक होता है। जनजीवन की अनुभूतियों से उद्भूत जीवन के सत्य ही 'लोकोक्ति' के रूप में प्रसिद्धि पा लेते हैं। ऋग्वेद की विशेषता है कि यहाँ ऐसी लोकोक्तियाँ भी प्रचुरता से उपलब्ध हैं। लोकसामान्य अनुभव से उत्पन्न उक्ति का एक उदाहरण है – **'पश्यदक्षवान् न विचेतदंध'**। (ऋ १.१६४.१६)

'आँखवाला देखता है, अंधा नहीं।' जीवन की नानाविध

शेष भाग पृष्ठ १७५ पर

भाव सूचियाँ बहुत हैं, भाव सिर्फ राम हैं

अमन अक्षर

सारा जग है प्रेरणा, प्रभाव सिर्फ राम हैं।
भाव सूचियाँ बहुत हैं, भाव सिर्फ राम हैं।।

कामनाएँ त्याग, पुण्य काम की तलाश में
तीर्थ खुद भटक रहे थे, धाम की तलाश में
ना तो दाम, ना ही किसी नाम की तलाश में
राम वन गये थे, अपने राम की तलाश में
आप से ही आपका चुनाव सिर्फ राम हैं।
भाव सूचियाँ बहुत हैं, भाव सिर्फ राम हैं।।

ढाल में ढले समय की, शस्त्र में ढले सदा
सूर्य थे मगर वो सरल दीप से जले सदा
ताप में तपे स्वयं ही, स्वर्ण से गले सदा
राम ऐसा पथ हैं जिसपे राम ही चले सदा
दुख में भी अभाव का अभाव सिर्फ राम हैं।
भाव सूचियाँ बहुत हैं, भाव सिर्फ राम हैं।।

ऋण थे जो मनुष्यता के वो उतारते रहे
जन को तारते रहे तो मन को मारते रहे
इक भरी सदी का दोष निज पर धारते रहे
जानकी तो जीत गईं राम हारते रहे
सारे दुख कहानियाँ हैं, घाव सिर्फ राम हैं।
भाव सूचियाँ बहुत हैं, भाव सिर्फ राम हैं।।

सबके अपने दुख थे सबके सारे दुख छले गये
वो जो आस दे गये थे वो ही सांस ले गये
रामराज की ही आस में दिए जले गये
रामराज आ गया तो राम ही चले गये।
हर घड़ी नया-नया स्वभाव सिर्फ राम हैं
भाव सूचियाँ बहुत हैं, भाव सिर्फ राम हैं।।

जग की सब पहेलियों का दे के कैसा हल गये
लोक के जो प्रश्न थे वो शोक में बदल गये
सिद्ध कुछ हुए ना दोष, दोष सारे टल गये
सीता आग में न जलीं, राम जल में जल गये
सीताजी का हर जनम बचाव सिर्फ राम हैं।
भाव सूचियाँ बहुत हैं, भाव सिर्फ राम हैं।।

(पांचजन्य से साभार)

मुक्ति गीत

पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा।।
पत्थर की, निकलो फिर गंगा-जल-धारा!
गृह-गृह की पार्वती!
पुनः सत्य-सुन्दर-शिव को सँवारती
उर-उर की बनो आरती!
भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा।
तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा।।

(निराला रचनावली खण्ड-१, पृ-३४०)
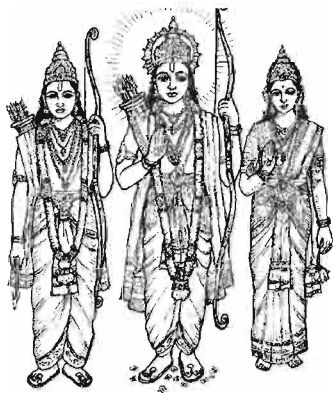
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (८/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

इसी का आध्यात्मिक संकेत भगवान शंकर और भगवान राम के विवाह में आता है। एक पक्ष तो विवाह के आनन्द का है, और दूसरा आध्यात्मिक और तात्त्विक है। एक ओर हैं मैना, ये पार्वतीजी की माता हैं और दूसरी ओर सुनैनाजी हैं, जो जनकनन्दिनी श्रीसीताजी की माता मानी जाती हैं। पर दोनों में एक अन्तर है। मैना यह समझ बैठी कि पार्वती का जन्म मेरे गर्भ से हुआ और मैं उसकी माता हूँ। सुनैनाजी यह गर्व नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनके गर्भ से सीताजी का जन्म नहीं हुआ। लेकिन उन्होंने भावना से उन्हें पुत्री स्वीकार कर लिया। अब इसमें दो सूत्र हैं। हिमांचल मानो विवेक हैं और मैना बुद्धि हैं। महाराज श्रीजनक जो हैं, वे निष्काम कर्मयोग या ज्ञान के आचार्य हैं और सुनैना जी भावना हैं। एक ओर बुद्धि है और दूसरी ओर भावना है।

अब उस सन्दर्भ में वर्णन आता है कि जब दूलहे के रूप में भगवान शंकर आए और मैना ने सुना कि दुलहा आ रहा है, जिस दुलहे के लिये मेरी कन्या ने इतनी तपस्या की, इतनी साधना की है, वह वर तो अद्वितीय ही होगा। वे सोने की थाल में दीपक लाकर वर की आरती उतारने जब गईं, तो कल्पना से परे वर था। ऐसा अद्भुत वर, जो नग्न हो। दुलहे तो उस दिन बढ़िया से बढ़िया कपड़े, न हो, तो उधार लेकर पहन लेते हैं। यह विचित्र दुलहा था, शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं। अंगों में आभूषण के स्थान पर साँप और बिच्छू सब लिपटे हुए हैं। जब इस दुलहे को देखा तो –

कंचन थार सोह बर पानी।
परिछन चली हरहि हरषानी।।
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा।
अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा।।
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। १/९५/३-५

इस दुलहे की आरती कौन उतारे? स्वागत कौन करे? थाल पटक दिया, दीपक बुझ गया, और रोती हुई मैना और स्त्रियाँ भीतर चली गईं। ऐसा अगर किसी के विवाह में हो जाय, तो सोचेगा कि कितना बड़ा अशुभ हो गया! आरती की थाल पटक दी! आरती का दीपक बुझ गया! जहाँ स्वागत में दीया बुझ जाये! उस दुलहे को कैसा लगेगा, जिसका स्वागत ऐसा किया जाय! पर गोस्वामीजी ने कहा कि अन्तर यही है कि उधर मैना और ये स्त्रियाँ रो रही हैं और वहीं शंकर जी हँस रहे हैं, बड़े प्रसन्न हैं। लिखा हुआ है कि शंकर का स्वागत तो कुछ हुआ नहीं। तब शंकरजी को लौट कर चले जाना चाहिए था कि स्वागत में इतना अपमान हुआ, अब विवाह मैं करूँगा नहीं। वहाँ पर लिखा हुआ है – **गए महेसु जहाँ जनवासा।** जहाँ बारात ठहरने का प्रबन्ध था, वहाँ जाकर बैठ गये। लोगों ने कहा, महाराज, आप प्रसन्न हो रहे हैं।

दुख लेने में एक तो वे घटनाएँ होती हैं, जिससे कुछ पीड़ा होती है। यदि कोई पीड़ा शरीर में हो, तो वह पीड़ा तो होती है, पर व्यक्ति मन में दुख की सृष्टि कर लेता है, जबकि कुछ लोग सुख की सृष्टि करने में बड़े निपुण होते हैं। जो दुख कर्म ने या ब्रह्मा ने बनाया है, वह अगर जीवन में आ गया, तो उस पर बस नहीं है, पर जो दुख हम बनाते हैं, कम-से-कम उसमें तो हम स्वतंत्र हैं। जो सुख दूसरे के हाथ में है, उस पर हमारा बस नहीं है, लेकिन जो सुख हम बना सकते हैं, उसका आनन्द अगर हम ले सकते हैं, तो हमारे सुख और दुख का भार बहुत हल्का हो सकता है। नहीं तो उन पण्डितजी की तरह जो सर्वत्र कुछ-न-कुछ दोष ही निकाल देते थे। लक्ष्मीजी ने भगवान से कहा, महाराज, सब की सेवा में इनको कमी लगती है, तो हम ही इनको निमन्त्रित करके ऐसी सेवा करें कि इनको

कोई कमी दिखाई न दे। जब स्वयं भगवान और लक्ष्मीजी सेवा करने लगे, तब तो फिर बात ही क्या है! बड़ी अद्भुत सेवा हुई! पर एक महीने के बाद जब पण्डितजी विदा होने लगे, तो भगवान ने पूछा, महाराज कोई त्रुटि तो नहीं हुई, आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ? तो उन्होंने कहा कि इतना अच्छा होना भी अच्छा नहीं है। लीजिए, बुरा होना भई बुरा है और अच्छा है, तो इतना अच्छा होना भी ठीक नहीं है। व्यक्ति की ऐसी विचित्र वृत्ति होती है! है तो बात हँसी की, पर बहुत बार हम लोग यही कार्य किया करते हैं। वैसे लगता है पर होता है न! बहुत बुराई देखें, तो कहते हैं, बड़ा बुरा व्यक्ति है, पर किसी में अच्छाई दिखाई दे जाय, तो हम संतुष्ट हो जाते हैं क्या कि यह बड़ा अच्छा व्यक्ति है? नहीं, नहीं वहाँ भी कुछ-न-कुछ बुराई खोजेंगे। सोचते हैं कि अच्छा तो लग रहा है, पर इस अच्छे के पीछे क्या है? जब तक अच्छे को बुरे न बना लें, तब तक हमें संतोष नहीं होगा।

भगवान शंकर से पूछा गया, महाराज, इतना अपमान और आप इतना प्रसन्न क्यों हो रहे हैं? शंकरजी ने कहा, एक बड़ा प्रसिद्ध दोहा है, जिसमें कहा गया –

पति रूपहि मातु धन पिता नाम विख्यात।

विवाह में लोग पाँच वस्तुओं को देखते हैं। 'पतिरूपहि' – पति और पत्नी, वर और कन्या एक दूसरे में रूप की भावना करते हैं। 'मातु धन' – दोनों घर की माताएँ चाहती हैं कि विवाह धनी घर में हो। 'पिता नाम विख्यात' – पिता प्रसिद्धि, नाम-यश चाहते हैं। और –

उत्तम कुल बान्धव चहैं भोजन चहहिं बरात।।

अब अन्य लोगों को ये वस्तुएँ चाहिए, पर बारात को अच्छा सत्कार चाहिए। कई लोग तो कह देते हैं कि भई, और जो करना सो करना, पर हमारी बारात का सत्कार अच्छा होना चाहिए। भगवान शंकर ने कहा, कितना सुन्दर सत्कार है, कितना आनन्ददायक है, मैं बड़ा प्रसन्न हूँ कि मेरे बारातियों का बड़ा सुन्दर सम्मान किया गया। अब वह अर्थ लेने की वृत्ति क्या है? पूछा गया कि संसार के सबसे बड़े कवि कौन हैं? एक तो आदि कवि वाल्मीकि माने जाते हैं और दूसरी ओर सबसे बड़े महान कवि तो भगवान शंकर हैं।

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना। ७/१३०/१

भगवान शंकर ही सबसे बड़े कवि हैं। रामचरितमानस का निर्माण उन्होंने सबसे पहले किया। वाल्मीकि जी बाद में रामायण का निर्माण करते हैं, तब वह प्रगट हो जाती है। किन्तु उसके पहले **'रचि महेस निज मानस राखा।'** बहुत मधुर संकेत है। मानो भगवान शंकर ने कहा कि जब कवि का विवाह होगा, तो बारात में किसे निमंत्रण दिया जायेगा? आप सारे सगे-सम्बन्धियों का परिचय देते हैं, निमंत्रण देते हैं, पर कवि के जो बाराती हैं, वे तो नवरस ही हैं। कवि तो बारात में सम्मिलित होने के लिए उन नवरसों को निमंत्रण देगा। नौ रस बाराती बन कर आए और भगवान शंकर ने कहा, देखिए जैसा बाराती था, उसका वैसा सम्मान हुआ। किसी ने कहा, महाराज! मैना तो आपको देखकर काँपने लगीं। बोले, यह रौद्र रस का स्वागत था। वे तो रोने लगीं। बोले, यह करुण रस का स्वागत है। उन्होंने कहा उन्हें भूत-प्रेत के हड्डियों के शरीर को देखकर घृणा हो गई। बोले यह बीभत्स रस का स्वागत है। ऐसा बढ़िया स्वागत, जिसके लिये जैसा होना चाहिए, वैसा हुआ। करुण रस के स्वागत किस काम का जिसमें आँसू न आवे। बीभत्स रस किस काम का जिसमें घृणा न हो जाय। भगवान कहते हैं, रस केवल मीठा ही थोड़े ही होता है? रस केवल हास्य थोड़े ही है? कितना बड़ा दर्शन है, हमको लगता नहीं है। ये नौ रस भोजन में भी है। षटरस क्या है? क्या केवल मिठाई ही रस है? वहाँ लिखा हुआ है – **'मधुर तिक्त कषाय अम्ल'**। इसी प्रकार से नौ रस होते हैं। जीवन में इसका अभिप्राय यह है कि जीवन में अगर ये स्थितियाँ आएँ, तो उन्हें हम रस के रूप में देखें। सीधी सी बात है। यह तो नहीं कहा शास्त्रों ने कि शान्त रस, रस है और करुण रस, रस नहीं है। बीभत्स रस, रस नहीं है। जो बीभत्स को रस की कोटि में देखे, जिसने बीभत्स को रस कहने का साहस किया हो, उसका दार्शनिक चिन्तन कितना प्रबल रहा होगा! इसका अभिप्राय है सृष्टि में यदि आप रहेंगे, तो हो ही नहीं सकता कि कभी ऐसी घटना न हो जो डरावनी हो, कभी आपके जीवन में आँसू का अवसर न आए, कभी कहीं घृणोत्पादक दृश्य न हो। अगर हम सजग होंगे, अगर शिव के समान सर्वभाव में होंगे, तो यह मानकर चलेंगे कि सृष्टि में सब कुछ हो सकता है। क्योंकि यह सृष्टि ईश्वर की है। ईश्वर एक कवि हैं। यह सृष्टि क्या है? यह सब उसकी एक कविता है। मंत्र में कहा गया है – **पश्य देवस्य काव्यम्**। अर्थात्

ईश्वर के काव्य को देखो। संसार को नहीं, ईश्वर की इस कविता को देखो। जब यह कविता है, तो कविता में नवरस होगा। जब कोई व्यक्ति इस सत्य को समझ लेता है, तो भगवान शंकर के समान मुस्कुराना पड़ता है। उसको लगता है कि हाँ, हाँ बरातियों का सम्मान हो गया, तो मेरा सम्मान बाद में हो, तो कोई चिन्ता नहीं। महाराज, बारातियों की तो आपने व्याख्या कर दी, पर आपका तो अपमान हुआ! शंकरजी ने कहा, नहीं। तत्त्वत: तो मेरा भी सम्मान हुआ। कैसे? बोले, मैना सोने की थाल में दिया जलाकर आरती उतारने आ रही थीं। दीपक का तो बड़ा महत्त्व है। पर दीपक का महत्त्व होते हुए भी सूर्य का उदय होते ही दीपक को बुझा ही दिया जाता है। मैना ने अनजाने में भी यह समझ लिया कि दूल्हे के रूप में सूर्य उदय हो गया, अब दीपक की आवश्यकता नहीं है। यह बुद्धि वृत्ति जो है, वह दीपक है और बुद्धि वृत्ति के द्वारा ही हम संसार के रहस्यों को जानते हैं, पर जब परम प्रकाशक वह शिवतत्त्व सामने होता है, तब सोने की थाल की आवश्कता है, क्योंकि सोने का थाल तो सत्य को ढकने वाला है – **हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम्।** जब स्वर्ण का पात्र गिर जाय, जब बुद्धि का दीप बुझ जाय, यही तो तत्त्वत: शिव का स्वरूप है। इसीलिए सबका अर्थ बदलने के लिए सत्संग की आवश्कता होती है। क्योंकि सबसे अधिक क्रोध मैना को आया, तो नारदजी पर आया। कहती हैं, अरे –

नारद कर मैं काह बिगारा।
भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा।।
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा।
बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा।।
साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया।
उदासीन धनु धामु न जाया।।
पर घर घालक लाज न भीरा।
बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा।। १/९६/१-४

नारद का मैं क्या बिगाड़ी थी कि उन्होंने पागल के लिए तपस्या कराया? वे खूब नारद की आलोचना करती हैं। कभी-कभी लोगों को संतों से बड़ा डर लगता है कि कहीं ये घर न उजाड़ दें। लोग संतों की खोज में तो रहते हैं, पर उस घटना का मुझे स्मरण आता है। स्वामी शरणानन्दजी महाराज प्रज्ञाचक्षु थे। वे उत्तर इतने अनोखे देते थे कि वे छोटे वाक्य में बड़ी भारी बात कह जाते थे। एक सज्जन थे, उनमें विवेक नहीं था, तो जो बात नहीं कहनी चाहिए, वह बात उन्होंने कह दी। उन्होंने कहा, महाराज पहले जैसे महात्मा होते थे, वैसे आज कल क्यों नहीं होते? अब लीजिए, यह बात आप एक महात्मा से पूछ रहे हैं। दूसरे हों, तो रुष्ट हो जाएँ कि तुम मुझे क्या समझते हो! प्रश्न पूछनेवाले धनी थे। शरणानन्दजी महाराज खूब हँसे और हँसकर उन्होंने कहा, बात यह है कि पहले आप जैसे लोगों के घर से, जिनकी भोगों की इच्छा मिट जाती थी, वे जब महात्मा बनते थे, तो वे अच्छे महात्मा बनते थे। अब तुम लोगों ने तो अपने लड़कों को महात्मा बनाना बंद कर दिया है और हम जैसे नालायक ही महात्मा हो जाते हैं। अब हम क्या करें? इसका अर्थ है कि हम चाहते हैं महात्मा, पर वह महात्मा दूसरे के घर से ही आवे। तो मैना ने कहा कि कैसा यह नारद है, स्वयं तो ब्रह्मचारी है, मैंने ही भूल की, मेरी कन्या ने भूल की, ऐसे खराब स्वभाव के साधु के चक्कर में आकर यह क्या कर बैठी! पागल के लिए तपस्या किया। अब पार्वतीजी समझने लगीं। पार्वती श्रद्धा हैं, मैना बुद्धि हैं। बुद्धि में श्रद्धा का उदय यह इसका अभिप्राय है। बुद्धि घटनाओं को बाहर से देखकर विचलित हो जाती है। श्रद्धा उसे समझने की चेष्टा करती है।

जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं।।
१/९६/९

व्यक्ति तो अपने कर्मों का ही परिणाम भोगता है। इसलिए मेरे मस्तक में जो भी सुख-दुख लिखा होगा, वही तो मुझे मिलेगा। मैना को संतोष नहीं हो रहा है।

तुम्ह सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं।।
१/९५/११

जब नारदजी को समाचार मिल गया, तब क्या हुआ? तब नारदजी सप्तर्षियों को लेकर आए। अकेले जाने में तो पता नहीं कैसे व्यवहार हो, इसलिए आप भी साथ चलिए।**(क्रमशः)**

जो मुझ पर भक्ति करते हैं, वे ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करेंगे तथा उन्हें जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिलेगी। – श्रीरामचन्द्र

सन्त रविदासजी की दार्शनिक चेतना

डॉ. रामनिवास, अजमेर

मध्यकाल में वेद, शास्त्र, उपनिषद, पुराणों सहित लीला और अवतार कथाओं के विकृत विवेचन ने जो सामाजिक दूरियाँ तथा धार्मिक भ्रान्ति उत्पन्न कर दी थीं, संतों ने इन सभी भ्रांतियों को दूर किया है, आध्यात्मिक और सामाजिक समता की रसपूर्ण भाव-धारा बहाई है। इनकी वाणी के प्रभाव से साधारण जनता भी धर्म के वास्तविक तत्त्व को समझने लगी। लोक जीवन में व्याप्त धार्मिक दिशाहीनता दूर हुई। उनके द्वारा अनुभूत ब्रह्म, जगत, जीव, माया और मोक्ष का स्वरूप इस प्रकार है –

१. **ब्रह्म का स्वरूप :** रविदासजी ने ब्रह्म को निर्गुण अजन्मा, अनन्त और निराकार बताया है, ब्रह्म के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया है। यथा : हरि, गोविन्द, माधव, कृष्ण, मुरारी, राघव, करीम, कमलापति, खुदा, त्रिभुवनपति, गोपाल, केशव, ओंकार, मुकुंद, प्रभुजी। ये सभी नाम उन्होंने 'राम' के लिये ही प्रयोग किए हैं –

रैदास कहै जाकै हिदै रहै, रैनि दिन राम।
सोई भगता भगवत सम, क्रोध न व्यापै काम।।

उनका यह 'राम' निर्गुण ब्रह्म है। रविदासजी के राम लौकिक अवतार दशरथ सुत नहीं हैं। वे स्पष्ट कहते हैं –

रैदास हमारो रामजी, दशरथ करि सुत नांहि।
राम हमउ मंहि रमि रह्यो, बिसब कुटुंबह मांहि।।

रविदासजी के राम अगम, अगोचर, अव्यक्त, वर्णनातीत, अनिर्वचनीय, और निराकार हैं, उनकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती –

कहि रैदास अकथ कथा, बहुकाई करीजै।
जैसा तू तैसा तू ही, किया उपमा दीजै।।

वे और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

अजर अमर अडोल अभेषा,
निरगुण रहित रूप नहीं रेषा।
चेतन सत चित्त आनंदा,
निरविकार तेज अमित अभेदा।

समुद्र से बूँद का बनना संसार में सभी जानते हैं। लेकिन बूँद में ही समुद्र छिपा हुआ है, यह कोई बिरला ही जानता

सन्त रविदास

है। जो आन्तरिक साधना में लीन है, सिर्फ उसी साधक को ही ब्रह्म (परमात्मा) और बूँद (जीव, जीवात्मा या आत्मा) की एकता का अनुभव ज्ञान मिलता है –

रैदास लो रै जिस बून्द कूँ, सोई बून्द है समुन्द समान।
अन्तर खोजी कूं मिलइ, ब्रह्म बून्द कौ ग्यान।।

रविदास जी का विचार है कि परब्रह्म इस सृष्टि की रचना करनेवाला है। वही इसका संहारकर्ता है। वह धर्म, अधर्म, मोक्ष, जरा और मृत्यु के बन्धन से परे है। फिर भी प्रत्येक प्राणी के हृदय में उसका वास है। सारा आत्मसुख स्वयं के अनुभवजन्य सत्य प्रकाश में ही उपलब्ध है –

है सब आतम सुख स्वयं प्रकास सांचो।
निरन्तर निराहार कलपति ये पांचो।
आदि मध्य औसान एक रस तार बन्यो हो भाई।
थावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रह्यौ हरि राई।
सिव न असिव, साध अरु सेवग ऊंभै भाव नहिं होई।
सरवेश्वर स्त्रबागी, सरबगति, करता हरता सोई।
धरम अधरम मोछि नहिं बंधन, जरा मरन भव नासा।
द्रिंस्टि अद्रिस्टि ग्येय अरु ग्याता एकमेर रैदासा।

रविदास जी की दृष्टि ब्रह्म के सम्बन्ध में अद्वैतवादी है और उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है। वह किसी एक स्थान विशेष पर नहीं है, बल्कि सर्वव्यापी है। जीवन-मृत्यु, उदय-अस्त से परे वह सबमें है और सम्पूर्ण सृष्टि उसमें साँस ले रही है। भ्रम का नाश किस युक्ति से हो, यहाँ संसार में तो द्वैत भाव ही अनुभव में आ रहा है। कनक कुंडल, सूत और वस्त्र में मूलत: स्वर्ण और सूत विद्यमान है, ऐसे ही जल और तरंग, पत्थर और प्रतिमा में भी जल और पत्थर हैं, परन्तु दृष्टि-भेद से अलग-अलग दिखते हैं। अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है। जब तक प्रकाश द्वारा रस्सी दिखती नहीं, तब तक वह साँप ही अनुभव होती है। जैसे ही प्रकाश हुआ, अरे! यह तो रस्सी है। संसार में भी जीव और ब्रह्म दो अनुभव होते हैं, जैसे ही आत्मज्ञान का प्रकाश हुआ, तो फिर दो नहीं एक है, परन्तु आत्मज्ञान से पूर्व दो ही हैं। रस्सी साँप नही है, अंधेरे के कारण साँप समझ ली गई है, प्रकाश ने सत्य दिखा दिया, फिर न कहीं साँप और न उसकी उपस्थिति का भय है। सहज शून्य में यह जीवन मुक्ति का खजाना है, जो जीते जी इस शरीर में ही प्राप्त हो सकता है –

माधो भ्रम कैसे न बिलाइ, तातै द्वैत दरसै आइ।
कनक कुंडल सूत पट जुदा, रजु भुजंग भ्रम जैसा।
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यौं, ब्रह्म जीव दुति ऐसा।
विमल एक रस उपजे न बिनसे, उदय अस्त दोउ नांही।
बिगता बिगत घटै नहि कबहुं, बसत बसै सब मांही।
निहचल निराकार अज अनुपम, निरभै गति गोविन्दा।
अगम अगोचर अच्छर अतरक, निरगुन अति आनंदा।
सदा अतीत ग्यान धन वरजित, निरविकार अविनासी।
कहै 'रैदास' सहज सुन्न सति, जीवन मुकति निधि कासी।

सहज सुन्न अर्थात् 'सहज शून्य' में ही जीवन मुक्ति' और आत्मज्ञान की प्राप्ति मानी गई है। सहज साधना में सहज शून्य का वर्णन और भी कई स्थानों पर ब्रह्म के लिये प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्म के शून्य रूप का वर्णन द्रष्टव्य है –

जहाँ का उपजा तहाँ बिलाई,
सहज सुन्न में रहयो लुकाई।
सुन्न सहज में दोउ त्यागै, रांम न कहौ खुदाई।
का स्यौं जीव सीव कहौं माधो, सुनि सहजि घरि माई।

'ब्रह्म' की पतित पावनी शक्ति में परम्परा से विश्वास किया जाता है। अत: संत रविदास भी इसमें अपनी आस्था व्यक्त करते हैं। ब्रह्म के दो रूपों व्यक्त और अव्यक्त का वर्णन हमें उनकी वाणी में मिलता है, फिर भी उन्हें अव्यक्त रूप ही सर्वाधिक प्रिय है और वही उनका आराध्य है। विशेष बात यह है कि संत रविदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक होते हुए भी सगुण ब्रह्म को उपेक्षा अथवा विरोध, तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखते। विरोध उनकी भाषा और भावाभिव्यक्ति में कहीं नहीं मिलता। उनका यही गुण उन्हें लोक श्रद्धा का केन्द्र बनाने में सफल हुआ है।

२. जीव का स्वरूप – निर्गुण भक्ति की अद्वैतवादी विचारधारा के अनुसार जीव ब्रह्म का ही अंश माना जाता है। रविदासजी भी जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं मानते। उनकी दृष्टि में आत्मा-परमात्मा तत्त्वत: एक ही है। जैसे स्वर्ण और उससे बननेवाला आभूषण, जल और उसमें उठने वाली लहर अथवा तरंग में कोई भेद नहीं है। ठीक ऐसे ही आत्मा परमात्मा अथवा जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है –

तोही-मोही, मोही तोही अंतरु ऐसा,
कनक कटिक जल तरंग जैसा।

संसार की मोह निद्रा और पंच विकारों के कारण ही जीव एक-दूसरे से भिन्नता अनुभव करता है। जब पंच विकार मिट जाते हैं, तब यह जीव ब्रह्म में उसी प्रकार विलय हो जाता है, जैसे जल की तंरगें समुद्र में मिलती हैं

जब हम होते तू नाही, अब तू ही मैं नांही।
अनल अगम जैसे लहर, मइओ दधि केवल जल मांही।

यह जीव, ब्रह्म की चमक (द्युति) मात्र है। उसका आभास है। दर्पण में दिखने वाली परछाई अपना कोई अलग अस्तित्व या सत्ता नहीं रखती। वे जीव को 'आत्म रूप' भी मानते हैं और उसे पाप-पुण्य का भोग करनेवाला भी स्वीकार करते हैं –

पर किरती परभाउ बस, मानुष करत है कार।
मानुष तउ है निमित रूप, कहि रैदास विचार।।

व्यवहार में देखा जाए, तो ईश्वर, आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म इत्यादि की कल्पना, 'जीव' ही करता है। ये समस्त विचार जीव में ही समाहित हैं, जीव इनमें समाहित नहीं है। 'जीव' सर्वोच्च है। यदि जीव न हो, तो कुछ भी अस्तित्व सम्भव नहीं है। जीव का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चेतन है। यह निराधार और असंग भी है। पूर्णकाम और पूर्ण संतुष्ट भी है। 'जीव' को समझने के लिए विवेक चाहिए। जीव का कोई भौतिक-अभौतिक रंग-रूप नहीं है, जीव केवल ज्ञानस्वरूप

है। आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा से क्रमश: देखना, सूँघना, सुनना, चखना और स्पर्श किया जाता है। मन से हम स्मरण करते हैं। यह सब ज्ञान अनुभव करानेवाला जीव ही है। अर्थात् 'मैं' ही हूँ। मैं जीव ही सबको जानता हूँ। अब स्वयं को क्या जानना? 'मैं' तो हूँ ही। यदि 'मैं' नहीं होऊँ, तो फिर सबको कौन जाने। स्मृति और अनुभव के द्वारा सबको जाना जाता है। सहज साधना में समस्त वासनाओं को त्याग देने पर जो बचता है, वह जीव का वास्तविक स्वरूप है। सभी चेतन जीवों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है, परन्तु सभी के गुण-धर्म-स्वभाव और स्वरूप एक समान हैं, जो ज्ञानमय हैं। आत्मज्ञान होने पर द्वैत नहीं रहता -

भणै रैदास अब का कहि गाऊँ, जउ कोई औरहि होई।
जा स्यौं गाइहि गाइ कहत हैं, परम रूप हम सोई।।

एक जीव दूसरे जीव से अलग है। अत: एक जीव के सुख-दुख दूसरे के नहीं हो सकते। इसी प्रकार बंधन और मोक्ष भी एक दूसरे के नहीं हो सकते। वे प्रत्येक जीव के अपने-अपने हैं। जीव-जीव की भिन्नता इतनी स्पष्ट और साकार दिखाई देती है और अनुभव होती है कि सभी को एक ही तत्त्व मान लेना संभव नहीं है। यदि संसार में एक ही अखंड सत्ता व्याप्त मानी जाए, तो दूसरे का अस्तित्व ही संभव नहीं है। एक ही अखंड सत्ता व्याप्त होने से गति और सृष्टि नहीं हो सकती। अनेक जीवधारियों की सत्ता अलग-अलग है, लेकिन सब जीवों का सत्तापन एक ही है। तात्पर्य यह है कि सबकी अपनी-अपनी सत्ता है। सभी जीव एक-दूसरे से अपना-अपना भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व रखते हैं। लोक व्यवहार द्वैत में चल रहा है। फिर सभी को एक किस प्रकार कहा जाए?

मैं एक आत्मा ही सारे संसार अथवा सब प्राणियों में व्याप्त हूँ, यह अनुभव किसी को नहीं हो सकता। साधना के द्वारा प्रत्येक जीवात्मा को सिर्फ अपने अस्तित्त्व का ज्ञान होगा। समस्त संकल्प और विकल्पों के छूट जाने पर ही समाधि फलित होती है। यही 'आत्मज्ञान' है अथवा परमात्मा से मिलन। यहाँ दो की संभावना ही नहीं है। जब तक दो या द्वैत है, तब तक आत्मज्ञान या समाधि नहीं है। संकल्पों विकल्पों के कारण ही जीव के सामने संसार खड़ा होता है। जब स्मरण और संकल्प मिट गए, तो फिर संसार भी मिट जाता है। यह चेतन जीव अन्य जीवों और जड़ तत्त्वों से अलग हो गया। जीव स्वयं अपना आश्रय है। जीवात्मा की स्थिति पररूप में कभी नहीं होती, बल्कि अपने स्वरूप में ही होती है। जीव की स्वरूप-स्थिति में द्वैत नहीं है, वहाँ चेतन अकेला रहता है और यही है वास्तविक अद्वैत –

स्वयं रूप भेखी जब पहरी, बोलि तब सुधि आई।
ऐसी भगति हमारी संतों, प्रभुतो इहै बड़ाई।।

प्रत्येक मनुष्य का मूल स्वरूप जीव है। इसका गुण है ज्ञान और चेतना। जीव अपना स्वरूप होने के कारण आत्मा है। आत्मा का एक अर्थ है अपना। आत्मा जब मल विक्षेप के आवरण से मुक्त हो जाती है, तो परमात्मा कहलाती है। सर्वश्रेष्ठ होने से इसे ब्रह्म कहा जाता है। यह स्वयं अपना स्वामी है। अत: इसे ईश्वर भी कहा गया है। किसी भी तरह से विचार कर देखा जाए, यह जीवात्मा ही चेतन है। यही आत्मा, परमात्मा, जीव, ब्रह्म, ईश्वर कही जाती है। समस्त कार्य-व्यापार और कल्पनाओं का जन्मदाता जीव ही है। संसार में 'जीव' की ही सर्वोच्च सत्ता और महत्ता है। सभी में जीव ही अनेक व्यक्तित्व के रूप में प्रकट है। यही अपने कर्मों का स्वामी और भोक्ता है – **सरबै एकु अनेकैं, सुआमी, सभी घट भोगवै सौई। (क्रमशः)**

कितने ही दीक्षा के बाद गुरु को कहते हैं, ''हम तो कुछ भी नहीं कर सकते, भविष्य में आप पर सब भार डालकर हम तो मुक्त हैं।'' इसका मतलब धोखा देना, कुछ न करने का अभिप्राय है। धर्मलाभ क्या इतनी सहज और सस्ती चीज है? ''जैसा भाव वैसा लाभ'', और मुँह से कह देने से ही क्या भार समर्पित हो गया? वह बहुत ही साधनासापेक्ष है। अपने अहं की बलि देकर पूर्णतः आत्मसमर्पण करना पड़ता है। दो पैसे के रोजगार के लिए रात-दिन मारे-मारे फिर सकते हो, आहार-निद्रा परित्याग करके खटपट कर सकते हो और जब ज्ञान-भक्ति प्राप्ति की बारी आये तो ''हमसे तो कुछ नहीं बनता।'' वाह! खूब मजे की बात है। दिन-पर-दिन, मास-पर-मास, साल-पर-साल, काया-मन-वाणी से यथासाध्य उपासना करने पर वस्तुप्राप्ति होती है। ''नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'' – मुक्ति का अन्य मार्ग नहीं।

गुरुदत्त मन्त्र की आप्राण साधना और उनके उपदेश को जीवन में पालन करने का प्रयत्न ही यथार्थ गुरुदक्षिणा है – उनके स्नेहभाजन होने और सिद्धि प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। – स्वामी विरजानन्द

सारगाछी की स्मृतियाँ (९०)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२७-४-१९६२

प्रश्न – मनुष्यों में जो पृथकता दिखाई पड़ती है, वह क्या उनके कर्मफलों के कारण है? डार्विन के विवर्तनवाद (विकासवाद) और हमलोगों के कर्मफल में क्या भेद है?

महाराज – उन लोगों के देश में पूर्वजन्म की मान्यता नहीं है, इसीलिए उनके यहाँ यह विवर्तनवाद (विकासवाद) है। हमलोग पूर्वजन्म में विश्वास करते हैं, इसलिए हम समझते हैं कि जीव के कर्मों के अनुसार कभी उसकी नीच योनि और कभी उच्च योनि होती है। किन्तु इस जन्म में कुत्ता होने पर अगले ही जन्म में वह संन्यासी नहीं होगा, धीरे-धीरे ऊपर उठता है, धीरे-धीरे नीचे आता है। नीचे आने पर फिर धीरे-धीरे उठना होगा। जब सर्वप्रथम जगत की सृष्टि हुई, तब कौन जीव थे, अथवा वे जीव कहाँ से आए, कैसे, क्यों इन सबका उत्तर देना सरल नहीं है। किन्तु हमारे इतिहास-पुराण कहते हैं –

स्वामी प्रेमेशानन्द

महर्षय: सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमा: प्रजा:।।

(गीता - १०/६)

हमारी समस्त सृष्टि के मूल ब्रह्मा हैं। उसी ब्रह्मा से धीरे-धीरे सृष्टि नीचे की ओर गई है, निम्न जीव पुन: अपने पुराने स्वभाववश ही उस अवस्था को पाने के लिए ऊपर उठने की चेष्टा कर रहे हैं। मानो एक इस्पात के फलक को मोड़कर रखा गया है, वह अपनी स्वाभाविक स्थिति को पाने के लिए संघर्ष कर रहा है।

प्रश्न – निष्काम क्यों होना चाहिए? यदि सकाम भाव से कोई ईश्वर को कुछ देता है, तो क्या वे ग्रहण नहीं करेंगे?

महाराज – सकाम भाव के रहने पर उनके ऊपर भक्ति कहाँ है! उस भक्त की भक्ति तो कामना पर ही है। वह भगवान को एक उपाय, साधन के रूप में अपनाना चाहता है। हमारी द्वैतबुद्धि आसानी से जाना नहीं चाहती है।

हमलोग किसी भी प्रकार से यह समझना नहीं चाहते कि मैं और भगवान अलग नहीं हूँ। मनुष्य और उसके अँगूठे में जो अन्तर है, ईश्वर और जीव में ठीक वही अन्तर है। यदि अँगूठा मनुष्य के साथ आत्मीयता बोध (प्रियता-बोध) करता है, तो फिर उसका पृथक् अस्तित्व कहाँ है? तब वह समष्टि के साथ एक हो जाता है।

प्रश्न – राजयोग में है कि चित्त निरोध करके बैठे रहो। क्या वही करना ठीक है?

महाराज – चित्त निरोध करके बैठे रहने से मन सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और फिर सूक्ष्मतम होते हुए क्रमश: लीन हो सकता है। किन्तु उस मार्ग के संकट भी असंख्य हैं, साधक कहीं भी पथ-च्युत हो सकता है। किन्तु ईश्वरचिन्तन रूप निदिध्यासन द्वारा मन को उस वृत्ति के आकार में तदाकार करने पर पतन का भय नहीं रहता। इसीलिए भगवान ने कहा – 'न मे भक्त: प्रणश्यति।'

एक अविवाहित युवक सरकारी नौकरी करते हैं। सारगाछी में एक दिन उन्हें एकान्त में बुलाकर महाराज ने कहा, "देखो, रास्ते में एक वृद्धा बैठी है। यह कपड़ा उसे देकर आओ। किन्तु इस प्रकार देना, जिससे तुम उसका मुख न देख सको और वह भी तुम्हारा मुख न देख पाए। यह बात समझ रहे हो न?

"संसारी लोगों को धर्म-पथ पर रहना चाहिए, अन्यथा

सर्वनाश हो जाता है। जब सर्वनाश होता है, तब समझ में नहीं आता। अचानक हो जाता है। एक श्लोक है –

आजगाम यदा लक्ष्मीः नारिकेलफलाम्बुवत्।
निर्जगाम यदा लक्ष्मीः गजभुक्तकपित्थवत्।।

अर्थात् माँ लक्ष्मी थोड़ी भी त्रुटि सहन नहीं कर पाती हैं। थोड़ी अव्यवस्था देखते ही चली जाती हैं। माँ लक्ष्मी किस प्रकार आती है, इसे समझ पाना कठिन है। जैसे नारियल के भीतर स्थित जल – कैसे इतनी ऊँचाई पर जल पहुँचा। वैसे ही जब लक्ष्मी चली जाती हैं, तो बाहर से समझ में नहीं आता। जैसे कैंथ (एक प्रकार का बेल जैसा फल) को बाहर से देखने पर लगता है कि वह पूरी तरह बेल ही है, किन्तु तोड़कर देखने पर खोखला दिखता है। गज नामक एक प्रकार का कीड़ा है, वह भीतर का गूदा खा डालता है।''

१६-६-१९६२

आज सायंकाल ५ बजे समाचार मिला कि रामकृष्ण संघ के परमाध्यक्ष स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराज का देहान्त हो गया। पार्क नर्सिंगहोम में उनका आपरेशन हुआ था। १३ तारीख को ऑपरेशन हुआ था, आज पूर्वाह्न ९ बजे उनका देहान्त हुआ। अपराह्न १.३० बजे रेडियो से समाचार आया। प्रेमेश महाराज ने तो यह खबर सुनते ही सिर पर हाथ रख लिया। मुख का रंग फीका पड़ गया। ऐसा लगा कि उन्हें बड़ा कष्ट हुआ है। कुछ पल के बाद वे कहने लगे – ''अब वे परमानन्द में माँ के पास हैं। रामकृष्ण लोक में हैं, निर्वाण तो होगा नहीं। माँ से भेंट हुई है।''

एक व्यक्ति द्वारा 'अब क्या होना चाहिए' ऐसा पूछने पर महाराज बोले, ''वे तो संन्यासी थे, श्राद्ध आदि भी हो गया है। एक कहावत है – शवदाह, जलसमाधि और भूमि समाधि – ये तीन संन्यासी की आशा है। किन्तु बाबूराम महाराज का देहान्त होने पर महाराज ने तीन दिन हविष्यान्न ग्रहण किया था। संन्यासियों के लिए कुछ भी करणीय नहीं है, वे तो एक मृतदेह मात्र हैं। फिर भी समाज में रहना है, इसलिए तीन दिन निरामिष आहार करना होता है। किन्तु आप लोग गृहस्थ हैं, आप लोगों को थोड़ा कुछ करना होगा – तीन दिन हविष्यान्न ग्रहण, बारह दिन निरामिष आहार और पान, छाता, जूता प्रयोग ना करें और कम्बल पर सोएँ। थोड़ा कुछ करना चाहिए! यदि आप लोग इतना भी नहीं करेंगे, तो आपके बच्चे वह भी नहीं करेंगे, सौ रुपए की पूजा-दक्षिणा देकर समाप्त कर देंगे।''

१८-६-१९६२

एक युवक बीच-बीच में सारगाछी आश्रम में आता है। एक ब्रह्मचारी की इच्छा है कि वह साधु बन जाय, बीच-बीच में वे उस पर दबाव भी डालते हैं। प्रेमेश महाराज ऐसा देखकर कहते हैं, ''संन्यास का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार होने से समाज दुर्बल हो जाता है। संन्यासी लोग सोचते हैं कि वे गृहस्थों से अच्छे हैं तथा वे जगत-गुरु होकर प्रचार करते हैं – ''गृहस्थों की कोई गति नहीं है या गृहस्थों का उद्धार नहीं हो सकता।'' इससे गृहस्थ भी अपने को संन्यासी से कमजोर सोच-सोचकर अपनी एवं समाज की क्षति करता है। संन्यासी और गृहस्थ। ये दो अवस्थाएँ नहीं, बल्कि मार्ग (स्कूल) हैं। क्रम-विकास का प्रश्न है। हर स्कूल में करणीय और अकरणीय कार्य हैं। गृहस्थों में एक व्यक्ति के पिता सिलहट के किसान हैं। वे अपने गुरु के चरण को शिरोधार्य करके दिवंगत हो गए। फिर ऐसे संन्यासी लोग भी हैं, जो केवल भोग किया है, उन सबका संघर्ष अभी आरम्भ हुआ है।''

प्रश्न – 'योगस्थः कुरु कर्माणि' – क्या योगस्थ होकर कार्य करना सम्भव है?

महाराज – जैसे मजदूर आठ आना के लिए काम करता है, माँ बच्चे के लिए दिनभर जी-जान से परिश्रम करती है।**(क्रमशः)**

लोग तरह-तरह के कार्य इसलिए करते हैं कि वे समझते हैं कि ऐसा करना उनका कर्तव्य है। पर कितने लोग भगवान् को खोजते है? काम-काज अवश्य करना चाहिए। काम करने से मन ठीक रहता है। पर जप, ध्यान, प्रार्थनादि की भी विशेष आवश्यकता है। कम से कम सुबह-शाम तो एक-एक बार बैठना ही चाहिए। वह मानो नाव की पतवार के समान है। शाम को प्रार्थना के लिए बैठने से दिन भर अच्छा-बुरा क्या किया, क्या न किया, यह विचार मन में आता है। फिर पिछले दिन की मन की अवस्था के साथ आज की अवस्था की तुलना करनी चाहिए। फिर जप करते-करते इष्टमूर्ति का ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते समय पहले इष्टदेव का मुख दिखायी पड़ता है लेकिन इष्टदेव के चरणों से लेकर शिखा तक पूरे विग्रह पर ध्यान करने का प्रयास करना चाहिए। काम-काज के साथ यदि जप-ध्यान न करोगे, तो यह कैसे समझोगे कि उचित दिशा में जा रहे हो या अनुचित?

– श्रीमाँ सारदा देवी

परिश्रमी विद्यार्थी भगत सिंह

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

भगत सिंह का जन्म २८ सितम्बर, १९०७ को पंजाब (अब पाकिस्तान) के लायलपुर जिले के बंगा गाँव में हुआ था। उनके पिता सरदार किशन सिंह और माँ का नाम विद्यावती था।

अमर शहीद सरदार भगत सिंह को प्राय: क्रान्तिकारी देशभक्त के रूप में ही जाना जाता है, लेकिन वे बचपन से ही अध्ययनशील, विचारक और कलम के धनी लेखक भी थे। केवल २३ वर्ष की बहुत छोटी आयु में ही उन्होंने फ्रांस, आयरलैण्ड और रूस की क्रान्तियों का गहराई से अध्ययन किया था। भगत सिंह संस्कृत, अँग्रेजी, हिन्दी, पंजाबी, उर्दू के मर्मज्ञ थे तथा वे एक कुशल अनुवादक भी थे। नेशनल कॉलेज से लेकर जेल की कोठरी तक उनका अध्ययन सदैव जारी रहा।

भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह ने उन्हें सिखों के बालकों के लिए स्थापित 'खालसा स्कूल' की जगह डी.ए.वी.स्कूल में प्रवेश कराया था। बचपन से ही पढ़ाई-लिखाई में उनकी गहरी रुचि थी। पढ़ाई में वे अपनी कक्षा में अन्य छात्रों से बहुत आगे रहा करते थे। उनकी लिखावट बहुत ही सुन्दर थी। वे अपने शिक्षकों के सबसे प्रिय छात्र थे।

उस समय भगत सिंह पाँचवी कक्षा में थे। एक दिन उनके पिता उनके अध्यापक से मिले और पूछा – "आपके शिष्य का अध्ययन ठीक चल रहा है?" अध्यापक ने उत्तर दिया – "वह शिष्य नहीं, बल्कि स्वयं गुरु है। उसने तो पहले से ही सब कुछ अध्ययन किया हुआ है।" वे विद्यालय की पुस्तकों का अध्ययन तो करते ही थे, इसके साथ-ही-साथ उनके हाथ में जो भी समाचार पत्र या पुस्तकें आ जाती थीं, उन्हें भी पढ़ते थे। उनका ज्ञान उनकी आयु और कक्षा के हिसाब से अधिक था।

भगत सिंह

भगत सिंह ने असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर नौवीं कक्षा में ही विद्यालय जाना छोड़ दिया था। नेशनल कालेज के प्रोफेसर भाई परमानन्द, भगत सिंह के विचारों एवं वार्तालापों से प्रभावित हुए। प्रोफेसर परमानन्द ने उनके ज्ञान को परखकर उन्हें विशेष तैयारी के लिए दो माह का समय दिया। यद्यपि भगत सिंह कुछ वर्षों तक विद्यालय नहीं गये थे, किन्तु उनको इतिहास और राजनीति की अच्छी जानकारी हो गई थी। उनका ज्ञान ही नहीं, बल्कि उनकी चेतना भी उनकी शिक्षा से अधिक जाग्रत थी। उन्होंने चुनौती को स्वीकार किया। उनकी प्रतिभा को देखकर शीघ्र ही उन्हें कॉलेज में प्रवेश मिल गया। अब वे नेशनल कॉलेज के परिश्रमी विद्यार्थी हो गए।

सरदार भगत सिंह बड़ी उत्सुकता और लगन के साथ पुस्तकों का अध्ययन करते थे। वे अच्छे वक्ता, पाठक और लेखक थे। वे लेखक के साथ-साथ पत्रकारिता में भी निपुण थे। उनमें समाचारों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की अपूर्व क्षमता थी। उन्होंने 'अकाली' और 'कीर्ति' नामक इन दो समाचार पत्रों का सम्पादन भी किया था। वे एक सफल, समृद्ध लेखक थे तथा वे स्वयं ही ऐसा लेख हैं, जो सदा स्मरणीय हैं। यद्यपि साम्यवाद ही उनका प्रिय विषय था, तथापि उन्होंने उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से लेकर अक्तूबर, १९१७ की क्रांति तक के रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास का भी गहन अध्ययन किया था।

भगत सिंह को 'बर्थ ऑफ ए रशियन डेमोक्रेसी', 'क्राई फॉर जस्टिस', 'बोस्टन', 'व्हाट नेवर हैपेण्ड', 'आयल', 'इटर्नल सिटी' इत्यादि पुस्तकें बहुत प्रिय थीं।

जेल की काल-कोठरी में बन्द भगत सिंह पढ़ने तथा स्वतन्त्र रूप से लिखने में ही अपना समय व्यतीत करते थे। जेल में ही उन्होंने मातृभूमि पर प्राण-विसर्जन करनेवाले

शेष भाग पृष्ठ १७७ पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५२)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज हमलोग रामकृष्ण संघ में हैं। संघ के साथ हमलोगों का कैसा सम्बन्ध होना चाहिए? इस सम्बन्ध में थोड़ा कहिए।

महाराज – संघ उपास्य और हमलोग उपासक हैं, यही सम्बन्ध होना चाहिए।

– थोड़ा अधिक विस्तार से बताइए।

महाराज – हाँ, श्रीरामकृष्ण हमारे उपास्य हैं और हम लोग उपासक हैं। श्रीरामकृष्ण संघमूर्ति हैं। श्रीरामकृष्ण का जो भाव, आदर्श है, वही संघ के द्वारा प्रतिफलित हो रहा है, संघ से प्रकाशित हो रहा है। उनका भाव या आदर्श संघ के रूप में मूर्ति धारण किया है और इस संघ के द्वारा उनका भाव प्रचारित हो रहा है।

– महापुरुष महाराज ने एक स्थान पर कहा है, "संघ का आदेश ही ठाकुर का आदेश है।" इस बात को कैसे समझेंगे?

महाराज – केवल महापुरुष महाराज ही क्यों? स्वामीजी ने भी कहा है, संघ का आदेश ठाकुर का आदेश है।

– हो सकता है, महन्त महाराज ने ऐसा कुछ करने को कहा, जो साधु जीवन के विपरीत है। उस स्थिति में इस आदेश को ठाकुर का आदेश कैसा समझेंगे?

महाराज – महन्त महाराज की सारी बातें अकाट्य होंगी, ऐसी बात नहीं है। ठाकुर के जीवन के साथ, ठाकुर के भाव के साथ मिला लेना होगा। किन्तु इस प्रकार मिलाना बहुत कठिन होगा, बिल्कुल सरल नहीं है। क्योंकि हमलोग अपने मन से विचार करते हैं, तुलना करते हैं। हमलोगों का मन अशुद्ध है। अशुद्ध मन से विचार करने पर विचार में त्रुटि रह जाती है। किन्तु स्वामीजी ने संघ के आदर्श के सम्बन्ध में सम्मिलित, सामूहिक संघ के आदर्श की बात कही है। सम्मिलित संघ पर स्वामीजी ने बहुत-सा दायित्व भी दिया है।

– महाराज! सम्मिलित संघ माने न्यासी लोगों को समझेंगे?

महाराज – बाबा! तुमलोगों के साथ बात करते-करते देख रहा हूँ, तुमलोगों के चंगुल में फँस गया हूँ! (सभी हँसते हैं) न्यासी माने कोई व्यक्ति-विशेष नहीं। न्यासी परिषद के सामूहिक आदेश को ठाकुर का आदेश समझ सकते हो। वहाँ भी भ्रम नहीं होगा, ऐसी बात नहीं है। सामूहिक संघ के आदेश को भी ठाकुर के जीवन और भाव के साथ मिलाकर ग्रहण करना होगा। ठाकुर वेदस्वरूप हैं। जैसे वेद-वाक्य सरलता से समझ में नहीं आता है, गुरु और आचार्य से वेद-वाक्य का अर्थ समझना पड़ता है, वैसे ही यहाँ भी सामूहिक संघ के आदेश को ठाकुर के जीवन के आलोक में विचार कर लेना होगा। रामकृष्ण संघ में अन्तर्भुक्त का अर्थ केवल संघ के रजिस्टर में नाम रहना नहीं है, व्यापक अर्थ में संघ में रहने का अर्थ है, जिसने श्रीरामकृष्ण को जीवन के आदर्श के रूप में ग्रहण किया है। हमलोगों के संघ के रजिस्टर से तुम किसी का नाम काट सकते हो, किन्तु व्यापक अर्थ में जो रामकृष्ण संघ में हैं, वहाँ से किसी का नाम नहीं काट सकते हो।

– तब क्या 'रामकृष्ण सारदा मिशन' भी रामकृष्ण संघ में ही आएगा?

महाराज – हाँ, सारदा मिशन भी व्यापक अर्थ में रामकृष्ण संघ में ही है।

– महाराज! स्वामीजी ने हमलोगों का संघ स्थापित किया, ठाकुर से ही उन्होंने इसका आदेश-निर्देश प्राप्त किया था, इस सम्बन्ध में पुराने साधुओं से आपने कुछ सुना था क्या?

महाराज – हूँ, तुमको साक्षी रखकर ठाकुर निर्देश देंगे क्या? सुना नहीं है कि घंटा-पर-घंटा कमरे का दरवाजा बन्द कर ठाकुर स्वामीजी को कितनी बातें कहते थे? तब समझो, स्वामीजी पातालफोड़ नहीं हैं।

प्रश्न – महाराज! हमलोगों का तो संन्यास हुआ है। क्या हमलोग अपने माता-पिता अपने स्वजन-सम्बन्धियों को प्रणाम कर सकते हैं?

महाराज – क्यों नहीं कर सकते हैं? क्या हुआ है तुमलोगों का?

संन्यास हुआ है, तो क्या हुआ है? जब संन्यासी-

ब्रह्मचारियों के माता-पिता आते हैं या जब वे लोग माता-पिता से मिलते हैं, तब मैं विशेष रूप से माता-पिताजी को प्रणाम करने के लिए कह देता हूँ। क्योंकि कई लोगों को ऐसा संशय रहता है, विशेषकर संन्यासियों को कि क्या माता-पिता को प्रणाम करना ठीक होगा? राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) जब ठाकुर के पास थे, तब एक दिन उनके पिताजी आये हुए थे। महाराज ने ठाकुर को पूछा – ''पिताजी का जूठा खाऊँगा क्या? ठाकुर ने कहा – ''क्यों नहीं खायेगा? तुम्हें क्या हुआ है?'' (थोड़ा चुप रहकर)

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(शिक्षाष्टकम् – श्लोक ३)

(पूजनीय महाराजजी के साथ एक संन्यासी के मध्यप्रदेश में जाने पर उनके माता-पिताजी दर्शन करने आते हैं। महाराज ने उन संन्यासी को माता-पिता को उनके सामने ही साष्टांग प्रणाम करने को कहा था।)

प्रश्न – महाराज! श्रीरामकृष्ण वचनामृत में देखा जाता है कि ठाकुर किसी प्रसंग पर चर्चा कर रहे हैं। मास्टर महाशय या कोई दूसरा बोल रहा है – 'हाँ, सुना हूँ।' ठाकुर कह रहे हैं – ''केवल सुनने से ही नहीं होगा, धारणा होनी चाहिये।'' 'धारणा होनी चाहिए' इससे ठाकुर ने क्या समझाया है?

महाराज – धारणा होनी चाहिए, माने बात पर विश्वास होना चाहिए। एक कान से सुना और दूसरे कान से निकल गया, ऐसा नहीं। धारणा शब्द 'धृ' धातु से बना है। 'धृ' धातु का अर्थ है पकड़े रहना। जिसे सत्य जानता हूँ, उसे पकड़े रहना, धारणा का अर्थ है।

प्रश्न – महाराज! त्याग-तपस्या-तितिक्षा की बात हो रही थी। इस सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार देखे जाते हैं – पहला है – कठोरता, तितिक्षा की बहुत आवश्यकता है, शरीर की ओर ध्यान नहीं देना है। दूसरा – नहीं, शरीर उनका मन्दिर है। उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी होगी। इनमें कौन सा सत्य है?

महाराज – दोनों बातें सत्य हैं। किन्तु जो लोग कहते हैं – शरीर उनका मंदिर है, उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी होगी इत्यादि, वहाँ देखना होगा कि उनकी भावना कैसी है! (भावेर घरे चोरी) कहीं भावनाओं में छल-कपट तो नहीं है। सम्प्रति बातें सुन्दर हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १६३ का शेष भाग

अनुभूतियों से परिपूर्ण है, ऋग्वेद का एक समग्र सूक्त (१०.११७), जहाँ हर मंत्र में लोकोक्ति मिलती है –

'देवाः क्षुधं न ददुः वधं इत्।'– देवों ने जो भूख बनाई है, वह प्राणनाशिनी है। **'आशितं मृत्यवः उप गच्छन्ति।'** –अन्न खानेवाले को मृत्यु प्राप्त होती ही है।

'केवलाघो भवति केवलादी' (ऋ १०.११७.६)

'पृणन्नापिर पृणन्तमभि ष्यात्' (ऋ१०.१११७.६)

अर्थात् अकेले खानेवाला पाप खाता है। दाता अदाता से श्रेष्ठ है।

मानव-जीवन तथा मानव-स्वाभाव से सम्बन्धित लोकोक्तियाँ भी ऋग्वेद में खूब मिलती हैं –

'पुलुकामो हि मर्त्यः' (ऋ १.१७९.५) – मनुष्य बहुत इच्छाओं वाला होता है।

'अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यम्' (ऋ १.१७०.१) – दूसरे के मन का कोई ठिकाना नहीं।

पत्नी और सन्तान सम्बन्धी लोकोक्तियाँ भी मिलती हैं – **'जायेदस्तम'** (ऋ ३.५३.४) – पत्नी ही घर है। **'बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश'** (१.१६४.३२) – बहुत सन्तति वाला दुख पाता है।

कुछ उदाहरण सामान्य अनुभवों के भी मिलते हैं – **'न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति'** (ऋ१०.९५.१५) – स्त्रियों के साथ मित्रता नहीं होती। **'न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति'** (ऋ ३.५२.२३) – गधे को घोड़े के आगे नहीं रखते।

इस प्रकार से चिर-पुरातन ऋग्वेद संहिता में लोकजीवन की रम्य झाँकी के विभिन्न चित्र द्रष्टव्य हैं। लोक-जीवन की सरलता में भी एक प्रकार की सरसता रहती है। अनुभव के आधार पर प्रस्तुत की गई लोककथाओं-लोकोक्तियों में हृदय को छूने की शक्ति विद्यमान रहती है। इसी प्रकार अभिचारात्मक प्रहेलिकात्मक सूक्तों व मंत्रों में लोक की कामनाओं, सुख-दुखों, इच्छाओं व सपनों के प्रसंग मिलते हैं। लोरियाँ हों या मंत्रों के प्रयोगों से शत्रुनाश या रोगनाश के प्रसंग, सर्वत्र अपने रंग-बिरंगे रूपों में मन को आकर्षित करता है। ○○○ (साहित्य अमृत से साभार)

मानव रूपी मन्दिरों का सम्मान करें

तरुण विजय, पूर्व सम्पादक, पांचजन्य

दिल्ली में तापमान ४८ डिग्री हुआ तो लोग शिमला, मसूरी की ओर भाग चले। जिनकी पहुँच बेहतर थी, वे यूरोप चले गए। बाकी ने २४ घंटे कूलर-एसी चला लिए। पर जो ऐसा करने में असमर्थ थे, सफाई कर रहे थे, ऑटो रिक्शा चला रहे थे, १३-१३ किमी. साइकिल चलाकर घर से दफ्तर और दफ्तर से घर लौट रहे थे। उनके बच्चे मरे-मरे से पंखों के तले कक्षाओं में पाठ पढ़ रहे थे। गाँवों में गृहणियाँ पानी लाकर घर में इक्कट्ठा कर रही थीं, पशुओं की सेवा और घर का चौका-चूल्हा। ये वे भारतीय हैं, जो एसी, कूलर या शिमला-मसूरी वाले नहीं हैं। इनके जीवन में हाथ का पंखा भी आ जाए, तो बड़ी बात है। इनके बारे में सोचेंगे, तो असली भारत का ध्यान आयेगा।

ये भारतीय ४८ डिग्री तापमान सहते-सहते फुटपाथ पर ही मर जाते हैं। एकाध मरता है, तो खबर नहीं बनती। लू से तपकर ११८ मरे, तो खबर बन गई। इनके निधन पर विलाप करनेवाले इनके निकट सम्बन्धियों की भी कोई पहचान नहीं होती। इन्हें कुछ राहत राशि मिली या नहीं, इसका भी पता नहीं चलता। गए, सो गए।

ये वे वंचित भारतीय हैं, जो फुटपाथ पर जन्मते हैं, वहीं पलते हैं और वहीं मर जाते हैं। इनका खाना-पीना, रहना सब वहीं होता है। ये लोग वोट डालने जाते हैं, मालूम नहीं। जाते होंगे या नहीं भी जाते होंगे। इनका पार्षद, विधायक, सांसद, मंत्री कौन है? यह भी कौन जाने! कभी जानने की जरूरत ही नहीं पड़ी। कभी बीमार होते हैं, होते ही हैं। कचरा बीनते हैं, इकट्ठा करते हैं, बाजार जाकर बेचते हैं। कुछ तो ऐसा होता ही होगा कि जो शरीर पर खराब असर करे।

हम देहरादून की एक वाल्मीकि बस्ती में गए। सूखी नदी के किनारे ३०-४० घरों की बस्ती। दो-चार शौचालय बने हुए थे। देखा तो वहाँ के ईसाई पादरी का नाम उन शौचालयों के पत्थरों पर निर्माता के रूप में लिखा हुआ था। हम कुछ और बात करने गए थे। वहाँ उनकी बच्चियों और महिलाओं के चेहरे देखे, जो सुर्ख लाल थे। हमारे साथ जो महिला कार्यकर्ता थीं, उन्होंने कहा, 'वाह! आप लोग तो बहुत सुन्दर हैं।'' यह सुनकर वे खुश नहीं हुई। उनमें से एक उदास हो गई और बोली, ''बहनजी, हमको चमड़ी की बीमारी है। हम मुर्गे के पंख बीनते हैं, उनको साफ कर बाजार में बेचते हैं, जिनसे चिकन सूप वगैरह बनता है। जब मुर्गे के चूजे मिलते हैं, उन्हें साफ करते-करते यह बीमारी हो जाती है। डॉक्टर से लेकर दवाई लगाई है।'' हम स्तब्ध रह गए। यह घटना हमारे शहर की सीमा के भीतर की है। भगवान किसी को गरीबी न दे। इन भारतीय नागरिकों के बीच में कौन जाता है? फिर भी ये लोग जहाँ दो पैसे मिलते हैं, पत्थर जोड़कर वाल्मीकि मंदिर या कीर्तन की जगह बना लेते हैं और शाम को भोजन के बाद भजन आदि गा लेते हैं।

भारत के लगभग हर प्रदेश और नगर के जिन क्षेत्रों में जाएँ, गरीबी से बदहाल भारतीय नजर आते हैं। दिल्ली के चौराहों पर लाल बत्ती पर खड़ी एसी गाड़ियों के बंद शीशों पर ठक-ठक करते हुए छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियाँ या उनके मरियल से माँ-बाप अक्सर दिखते हैं, जो चालकों और साहबों को 'इरीटेट' करते हैं। कोई कह देते हैं, 'बदतमीज, बेवकूफ लोग! काम नहीं करते, भीख मांगते हैं! पुलिस इन्हें पकड़ती क्यों नहीं?' कोई-कोई साहब भीख माँग रहे भारतीय नागरिकों को ५-१० रुपये दे देता है, तो कोई सिर्फ एक रुपया देता है। वह भी इतनी दूरी से कि उनका हाथ इनके हाथ से छू न जाए।

ये भारतीय भिखारी क्यों बनते हैं? हर चौराहे, हर मन्दिर के बाहर दरगाहों के आसपास – निजामुद्दीन जाइए

या अजमेर शरीफ – हाथ फैलाए, दुनियाभर की दुआएँ देते ये लोग मिल जाएँगे। इन्हें रोटी या पैसा देने से पुण्य मिलता है, सबाब मिलता है, 'ऊपर वाला खुश होगा।'। ऊपर वाले की खुशी के लिये, अपने पुण्य और सबाब के लिए हमें भिखारी चाहिए ही। ऐसे भारतीय चाहिए, जो सिर्फ भीख माँगे। हम उन्हें एक रुपया दे दें और समझें कि हमने आज किसी की मदद कर दी। इससे बढ़कर झूठ, पाप और अपराध कुछ हो नहीं सकता। वास्तव में यह अपने आपको धोखा देना है। भिखारी को दो पैसे देकर पुण्य मिल जाता है। पुण्य की बात तो तब हो सकती है, जब हम उसको बराबरी दें, सम्मान दें। एक भारतीय नागरिक के नाते अपनत्व दें। अपने गिलास या टिफ़िन से उसे खाना खिलाएँ, उसे अस्पताल ले जाकर दवा दिलवा दें या स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों से बात करके अपने शहर के असहाय लोगों को ऐसा आश्रय स्थल दिलाएँ, जहाँ वे साफ-सफाई से रहें, किसी काम का प्रशिक्षण प्राप्त करें और एक सम्मानित भारतीय नागरिक बनें।

मन्दिरों में इतनी आय होती है। हर मन्दिर के बाहर भिखारी न मिलें, बल्कि जो भक्त असहायों की सहायता हेतु धन देना चाहते हैं, उस धन से भिखारियों को सक्षम, सम्मानित नागरिक बनानेवाले आश्रय स्थल चलाएँ, तो रामजी अधिक प्रसन्न होंगे। आपके चढ़ावे का सार्थक उपयोग होगा और मन्दिर इन भिखारियों की भीड़ की दीनता से मुक्त हो सकेंगे। नए मंदिर बनाने से लाख अच्छा है, मनुष्य रूपी मन्दिरों को सम्मानित और सार्थक स्वरूप प्रदान करें।ООО (पांचजन्य से साभार)

पृष्ठ १७३ का शेष भाग

वीर नवयुवकों की एक सूची बनाई। इसमें उन्होंने उनके जीवन के आदर्श सिद्धान्तों पर टिप्पणी करते हुए, उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र भी लिखा। इसमें उन्होंने अपनी अद्भुत स्मरणशक्ति के बल से इन देशभक्त वीरों के आदर्श वाक्यों को ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया था। उनकी स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। उन्हें रेवोल्यूशनरी नाम की अपनी पुस्तक के प्रथम खण्ड का प्रथम अंक कण्ठस्थ था। इसमें छोटे-छोटे अक्षरों से टाइप किये हुए चार बड़े-बड़े पन्ने थे।

जेल में जीवन के अन्तिम क्षणों तक भी उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा और लेखों के द्वारा अपने क्रान्तिकारी विचारों को व्यक्त किया। जेल से ही भगत सिंह १९२९ के 'यूथ लीग' के लाहौर में होने वाले अधिवेशन में अपना सन्देश भेजने में समर्थ हुए थे। यही नहीं समय-समय पर प्रकाशित 'क्रान्तिकारी पर्चों के लिए वे क्रान्तिकारी विचार भी एकत्र करते थे, जिसमें 'फिलॉसफी ऑफ दी बम्ब' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फाँसी से कुछ ही समय पहले उन्होंने 'नौजवान राजनैतिक कार्यकर्ताओं' के नाम एक सन्देश भेजा था, जो देश के नाम उनकी आखिरी वसीयत कही जा सकती है। उनके द्वारा लिखित लेख, पत्र आज भी उनके विचारों के दर्पण हैं। जेल में उन्होंने 'मैं नास्तिक क्यों हूँ?' नामक एक अँग्रेजी लेख भी लिखा था।

उनके लेख तथा उनकी शैली सरसता, सरलता, गहनता और स्पष्टता से भरे पड़े हैं। उनकी लेखन-शैली की सबसे अच्छी अभिव्यक्ति दिल्ली असेम्बली बमकाण्ड के बाद उनके द्वारा अदालत के समक्ष 'हम नम्रतापूर्वक इतिहास के गम्भीर विद्यार्थी होने का दावा कर सकते हैं' तथा गवर्नर जनरल के नाम लिखे उनके पत्र 'हमें फाँसी न देकर गोली से उड़ा दिया जाए' से स्पष्ट होती है।

बच्चों को अपने जीवन में भगत सिंह से संघर्ष करने के लिए प्रेरणा लेनी चाहिए। नई पीढ़ी के विद्यार्थियों को उनके जीवन के बलिदान एवं संघर्ष से आत्मनिर्लिप्त रहकर, गहन अध्ययन, मनन, आदर्श एवं गम्भीर विचारधारा विकसित करने की सीख लेनी चाहिए। भगत सिंह ने जीवन के कठिनतम क्षणों में भी अध्ययन करने की प्रवृत्ति का त्याग नहीं किया। उनके वकील प्रणव नाथ मेहता जब उनसे मिलने आये, तब भगत सिंह ने उनसे पूछा 'मेरी पुस्तक 'रिवोल्यूशनरी लेनिन' लाये या नहीं? मेहता ने उन्हें पुस्तक दी, तो वे उसी समय इस प्रकार पढ़ने लगे, जैसे उनके पास अब अधिक समय नहीं है। यही नहीं भगत सिंह फाँसी पर चढ़ने से पहले तक 'बिस्मिल' की जीवनी पढ़ रहे थे।

पिस्तौल और बम्ब कभी इन्कलाब नहीं लाते,
बल्कि इन्कलाब की तलवार
विचारों की सान पर तेज होती है।

२३ मार्च १९३१ को शाम ७.३० बजे भगत सिंह हँसते-हँसते देश के लिए शहीद हो गये।

बच्चों को भगत सिंह की तरह परिश्रमी विद्यार्थी बनने की आवश्यकता है। ООО

पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और रामकृष्ण संघ

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(गतांक से आगे)

एक दिन एक सज्जन स्वामी सारदानन्द जी के पास आये थे। सम्भवत: वे दार्शनिक थे, वे जोर-जोर से जोश के साथ भाषण दे रहे थे। स्वामी महाराज अपने आसन पर स्थिर और गंभीरता से बैठकर उनकी व्याख्या सुन रहे थे। उनके शब्द प्रहारों से मेरे कानों की दुर्दशा हो रही थी। मैं उकता गया। पता नहीं कैसे मेरे मन की व्यथा महाराज को पता चली? तब उन्होंने एक प्रत्यक्ष घटित घटना बतायी। उन्होंने कहा, ''एक बार मैं स्वामी प्रेमानन्द जी के साथ जगन्नाथपुरी में निवास कर रहा था। एक दिन रास्ते से जाते हुए कुछ बाबुओं से स्वामी प्रेमानन्द का तर्क-वितर्क शुरू हुआ। मैं एक ओर खड़ा होकर सुन रहा था। बाबूलोग अपने पक्ष का प्रमाण देते हुए 'उस पुस्तक में ऐसा लिखा है' ऐसे बता रहे थे और पूछते थे 'क्या आपने यह पुस्तक पढ़ी है?'' एक बाबू के ऐसा पूछने पर स्वामी प्रेमानन्द ने थोड़े क्रोध से उसे कहा, ''मैंने 'महापुरुष चरित' पढ़ा है। यह सुनकर वे बाबू लोग 'यह कौन-सी किताब है' सोचते हुए एक-दूसरे की ओर देखने लगे। किसी ने भी ऐसी कोई पुस्तक पढ़ी नहीं थी।'' यह घटना बताकर स्वामी सारदानन्द जी ने हँसकर कहा, ''महापुरुष-चरित' नाम की कोई पुस्तक अस्तित्व में नहीं है।'' स्वामी सारदानन्द जी के ये शब्द सुनकर उस दार्शनिक का मुँह बन्द हुआ। मेरा मन शान्त हुआ।

''एक दिन स्वामी प्रेमानन्द जी के भाई उद्बोधन आये थे। स्वामी सारदानन्द जी ने उनसे मेरा परिचय करवाया। वे उन्हें महिषादल की घटना बताने लगे। स्वामी प्रेमानन्द जी मेरा तुलसी रामायण का पाठ सुनकर कैसे प्रसन्न हुए? वे कितना मुझसे प्रेम करते थे? ये बातें उन्होंने बतायी। फिर मेरी ओर मुड़कर उन्होंने मुझे कहा, ''ये स्वामी प्रेमानन्द जी के भाई हैं।'' यह सुनकर मैं तुरन्त उन्हें प्रणाम करने के लिए आगे बढ़ा। किन्तु महाराज ने मुझे ऐसा करने नहीं दिया। इतनी चपलता मैंने कभी नहीं देखी थी। बाद में मैं समझा कि कायस्थ होने के कारण स्वामीजी ने मुझे उन्हें प्रणाम करने नहीं दिया। ऐसा करके उन्होंने तत्कालीन वर्णव्यवस्था की रक्षा की।

''एक दिन बैठक खाने में केवल हम दोनों ही थे। यह मौका देखकर मैंने स्वामीजी से कहा कि मुझे प्रत्येक महापुरुष के उपदेशों में समानता दिखती है। मैं तुलसीकृत रामायण पर भाष्य लिखूँगा। इसका उद्देश्य सभी महापुरुषों के उपदेशों में साम्य दर्शाना होगा। इस पर महाराज ने कहा, 'ये कार्य अभी मत करो। थोड़े समय के लिए रुक जाओ। तुम्हें भविष्य में और अच्छा आकलन होगा।'' बहुत काल व्यतीत होने के बाद आज लगता है कि उन्होंने मुझे बहुत अधिक समझा दिया है। उन्होंने जो कुछ कहा, वह सत्य है। उनका शरीर रामकृष्णमय था। अब मैं उनका यंत्र बन गया हूँ। पुस्तक पढ़ते समय मुझे अक्षर नहीं दिखते।

पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

''एक बार स्वामीजी का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था। इसलिए मैं उनसे मिलने गया। वे ऊपरी मंजिल में अपने कमरे में थे। स्वामी शुद्धानन्द जी उनसे वार्तालाप करके चले गए। किन्तु मैं वहीं बैठा रहा। तब मेरे सिर में बहुत दर्द था। कदाचित् मैंने यह बात उन्हें बतायी नहीं थी। वहाँ से निकलते समय उन्हें प्रणाम करने के लिए मैं उनके पास गया। तभी उन्होंने एक हाथ से मेरा मस्तक पकड़ा और माथे के दोनों ओर अँगूठा और मध्यमा से दबाकर खींचा। तुरन्त मेरा सिर दर्द ठीक हो गया और शरीर हल्का लगने लगा। उतनी प्रसन्नता मुझे मेरे जीवन में कभी भी प्राप्त नहीं हुई थी। तब मुझे स्वामी विवेकानन्द जी की लिखित एक घटना याद आयी। इसी प्रकार एक बार एक ख्रिश्चन महिला का सिर-दर्द और मानसिक चिंता स्वामीजी के हस्त-स्पर्श

से दूर हुई थी। इस घटना का जिक्र किसी पुस्तक या पत्र में कहीं आया है।''

निरालाजी ने स्वामी अखण्डानन्द जी के सेवाकार्य पर 'सेवा प्रारम्भ' शीर्षक से बड़ी मार्मिक कविता लिखी थी –

अल्प दिन हुए,
भक्तों ने रामकृष्ण के चरण छुए।
जगी साधना
जन-जन में भारत की नवाराधना।
नयी भारती
जागी जन-जन को कर नयी भारती।
घेर गगन को अगणन
जागे रे चन्द्र-तपन -
पृथ्वी ग्रह-तारागण ध्यानाकर्षण,
हरित कृष्ण-नील-पीत
रक्त शुभ्रज्योति नीत
नव नव विश्वोपवीत, नव-नव साधन।

खुले नयन नवल रे –
ऋतु के से भिन्न सुमन
करते ज्यों विश्व-स्तवन
आमोदित किये पवन भिन्न गन्ध से।
अपर ओर करता विज्ञान घोर नाद
दुर्धर-शत-रथ-घर्घर-विश्व-विजय-वाद।

स्थल जल है समाच्छन्न
विपुल-मार्ग-जाल-जन्य
तार-तार समुत्सन्न देश-महादेश,
निर्मित शत लौहयन्त्र
भीमकाय मृत्युतन्त्र
चूस रहे अन्त्र, मन्त्र रहा यही शेष।
बढ़ समर के प्रहरण,
नये-नये हैं प्रकरण
छाया उन्माद मरण-कोलाहल का,
दर्प जहर, जर्जर-नर
स्वार्थ पूर्ण गूँजा स्वर,
रहा है विरोध घहर इस-उस दल का।
बँधा व्योम, बढ़ी चाह,
बहा प्रखरतर प्रवाह
वैज्ञानिक समुत्साह आगे,
सोये सौ-सौ विचार
थपकी दे बार-बार
मौलिक मन को सुधार जागे !
मैकिस्म-गन् करने को जीवन-संहार
हुआ जहाँ, खुला वहीं नोब्ल पुरस्कार !
राजनीति नागिनी
डँसती है, हुई सभ्यता अभागिनी।
जितने ये यहाँ नवयुवक –
ज्योति के तिलक
खड़े सहोत्साह,
एक-एक लिये हुए प्रलयानल-दाह।
श्री 'विवेक', 'ब्रह्म', 'प्रेम', 'शारदा',
ज्ञान-योग-भक्ति-कर्म-धर्म-नर्मदा –
बहीं विविध आध्यात्मिक धाराएँ
तोड़ गहन प्रस्तर की काराएँ
क्षिति को कर जाने को पार,
पाने को अखिल विश्व का समस्त सार
गृही भी मिले,
आध्यात्मिक जीवन के रूप यों खिले।
अन्य घोर भीषण रव-यान्त्रिक झंकार –
विद्या का दम्भ,
यहाँ महामौनभरा स्तब्ध निराकार -
नैसर्गिक रंग।
बहुत काल बाद
अमेरिका-धर्म महासभा का निनाद
विश्व ने सुना, काँपी संसृति की थी दरी,
गरजा भारत का वेदान्त केसरी।
श्रीमत्स्वामी विवेकानन्द
भारत के मुक्त-ज्ञानछन्द
बँधे भारती के जीवन से
गान गहन एक ज्यों गगन से,
आये भारत, नूतन शक्ति से लगी
जाति यह रँगी।
स्वामी श्रीमदखण्डानन्दजी
एक और प्रति उस महिमा की,

करते भिक्षा फिर निस्सम्बल
भगवा-कौपिन कमण्डलु-केवल,
फिरते थे मार्ग पर
जैसे जीवित विमुक्त ब्रह्म-शर।
इसी समय भक्त रामकृष्ण के
एक जमींदार महाशय दिखे।
एक-दूसरे को पहचान कर
प्रेम से मिले अपना अतिप्रिय जन जानकर।
जमींदार अपने घर ले गये,
बोले – 'कितने दयालु रामकृष्ण देव थे !
आप लोग धन्य हैं,
उनके जो अपने ऐसे अनन्य हैं।''
द्रवित हुए। स्वामीजी ने कहा, –
''नवद्वीप जाने की है इच्छा, –
महाप्रभु श्रीमच्चैतन्य देव का स्थल
देखूँ, पर सम्यक् निस्सम्बल
हूँ इस समय, जाता है पास तक जहाज,
सुना है कि छूटेगा आज।''
धूप चढ़ रही थी, बाहर को,
जमींदार ने देखा, घर को
फिर घड़ी, हुए उन्मन
अपने आफिस का कर-चिन्तन
उठे, गये भीतर,
बड़ी देर बाद आये बाहर,
दिया एक रूपया, फिर फिरकर
चले गये ऑफिस को सत्वर।

स्वामीजी घाट पर गये,
'कल जहाज छूटेगा' सुनकर
फिर रुक नहीं सकें,
जहाँ तक करें पैदल पार –
गंगा के तीर से चले।
चढ़े दूसरे दिन स्टीमर पर
लम्बा रास्ता पैदल तै कर।
आया स्टीमर, उतरे प्रान्त पर, चले
देखा, हैं दृश्य और ही बदले, –
दुबले-दुबले जितने लोग,
लगा देश-भर को ज्यों रोग,
दौड़ते हुए दिन में स्यार
बस्ती में – बैठे भी गीध महाकार,
आती बदबू रह-रह,
हवा बह रही व्याकुल कह-कह
कहीं नहीं पहले की चहल-पहल,

स्वामी अखण्डानन्द

कठिन हुआ यह, जो था बहुत सहल।
सोचते व देखते हुए
स्वामीजी चले जा रहे थे।
इस समय एक मुसलमान बालिका
भरे हुए पानी मृदु आती थी पथ पर, अम्बुपालिका,
घड़ा गिरा, फूटा,
देख बालिका का दिल टूटा,
होश उड़ गये
काँपी वह सोच के,
रोयी चिल्लाकर,
फिर ढाढ़ मार-मारकर
जैसे माँ-बाप मरे हों घर।
सुनकर स्वामीजी का हृदय हिला,
पूछा – ''कह, बेटी, कह, क्या हुआ?''
फफक-फफककर
कहा बालिका ने, – मेरे घर
एक यही बचा था घड़ा,
मारेगी माँ सुनकर फूटा।''
रोयी फिर

वह विभूति कोई !
स्वामीजी ने देखीं आँखें -
गीली वे पाँखे,
करुण स्वर सुना,
उमड़ी स्वामीजी में करुणा।
बोले – ''तुम चलो
घड़े की दुकान जहाँ हो,
नया एक ले दें;''
खिली बालिका की आँखें।
आगे-आगे चली
बड़ी राह होती बाजार की गली,
आ कुम्हार के यहाँ?
खड़ी हो गयी घड़े दिखा
एक देखकर
पुख्ता सबमें विशेषकर,
स्वामीजी ने उसे दिला दिया,
खुश होकर हुई वह बिदा।
मिले रास्ते में लड़के
भूखों मरते।
बोली वह देख के, – ''एक महाराज
आये हैं आज,
पीले-पीले कपड़े पहने,
होंगे उस घड़े की दुकान पर खड़े,
इतना अच्छा घड़ा।
मुझे ले दिया।
जाओ, पकड़ो उन्हें, जाओ
ले देंगे खाने को, खाओ।''
दौड़े लड़के,
तब तक स्वामीजी थे बातें करते,
कहता दुकानदार उनसे, ''हे महाराज,
ईश्वर की गाज
यहाँ है गिरी, है बिपत बड़ी,
पड़ा है अकाल,
लोग पेट भरते हैं खा-खाकर पेड़ों की छाल।
कोई देता नहीं सहारा,
रहता हर एक यहाँ न्यारा,
मदद नहीं करती सरकार,
क्या कहूँ ईश्वर ने ही दी है मार
तो कौन खड़ा हो?''

इसी समय आये वे लड़के,
स्वामीजी के पैरों आ पड़े।
पेट दिखा, मुँह को ले हाथ,
करुणा की चितवन से, साथ
बोले – ''खाने को दो,
राजों के महाराज तुम हो।''
चार आने पैसे
स्वामीजी के तब तक थे बचे।
चूड़ा दिलवा दिया,
खुश होकर लड़कों ने खाया, पानी पिया
'हँसा एक लड़का, फिर बोला –
'यहाँ एक बुढ़िया भी है बाबा,
पड़ी झोपड़ी में मरती है, तुम देख लो
उसे भी,चलो।''
कितना यह आकर्षण,
स्वामीजी के उठे चरण।
लड़के आगे हुए,
स्वामी पीछे चले।
खुश हो नायक ने आवाज दी,
''बुढ़िया री, आये हैं बाबाजी।''
बुढ़िया मर रही थी
गन्दे में फर्श पर पड़ी।
आँखों में ही कहा
जैसा कुछ उस पर बीता था।
स्वामी जी पैठे
सेवा करने लगे,
साफ की वह जगह
दवा और पथ फिर देने लगे
मिलकर अफसरों से
भीख माँग बड़े-बड़े घरों से।
लिखा मिशन को भी
दृश्य और भाव दिखा जो भी।
खड़ी हुई बुढ़िया सेवा से
एक रोज बोली – 'तुम मेरे बेटे थे उस जन्म के।'

स्वामीजी ने कहा, –

''अबके की भी हो तुम मेरी माँ।''

(७ दिस.१९३७ 'अनामिका' से संकलित)

इस भावपूर्ण कविता के उपरान्त स्वामी अद्भुतानन्द विषयक एक घटना का वर्णन अपने 'सामाजिक पराधीनता' नामक लेख में करते हैं।

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) – अर्थ के दोनों उपयोग होते हैं – एक परमार्थ के लिए और दूसरा स्वार्थ के लिए। स्वामी अद्भुतानन्द एक संन्यासी थे। उनका आचरण 'अर्थमनर्थं भावय नित्यम' इस उक्ति की तरह था। किन्तु संसारी लोगों का ऐसा नहीं होता। उनके लिए –

''टका धर्मः टका कर्म टका हि परमो तपः।

यस्य गेहे नास्ति टका, 'हा टका' टकटकायते।''

स्वामी सारदानन्द जी लाटू महाराज से मिलने पर कहते थे, 'साधु! आपका वह टका टका कर्म मंत्र सुनाइये।'' इस प्रकार लाटू महाराज कहते थे, गृहस्थों के लिए धनार्जन करना धर्म है। जो गृहस्थ होकर भी धनार्जन नहीं करेंगे, वे गृहस्थ धर्म का पालन कैसे करेंगे? दीन-दरिद्र रहना क्या अच्छा है?'' एक बार गिरीशबाबू के यहाँ शरत महाराज ने कहा, 'माताजी के लिये (उद्बोधन) घर बनाने में बहुत कर्ज हुआ है। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता? कर्ज के ऊपर का ब्याज न देने से सत्य रक्षा नहीं होगी।'' इस पर लाटू महाराज ने उन्हें कहा, 'देखो शरत, मेरे मंत्र में कैसा जादू है? आपके जैसे साधु को भी पैसा चिन्तित कर रहा है। अब मेरा मंत्र मानेंगे या नहीं?'' शरद महारज ने विनोदपूर्वक कहा, 'आपके मंत्र से क्या धन आ जायेगा?'' इस पर लाटू महाराज ने कहा, 'मंत्र मानेंगे तो जरूर आयेगा।'' फिर शरद महाराज ने कहा, देखो साधु! तुम्हारे मंत्र से उलटा तो नहीं होगा?'' लाटू महाराज ने कहा 'नहीं रे शरद! ऐसा नहीं होगा।, देख लो।'' शरद महाराज ने गिरीश बाबू से कहा, ''साधु ने क्या कहा? आपने सुना? आप साक्षी हैं।'' यह सुनकर गिरीश बाबू ने कहा, ''इस बारे में साक्षी आदि की क्या आवश्यकता है? साधु के वचन सत्य कर देता हूँ।'' ऐसा कहकर गिरीशबाबू ने शरत महाराज को थोड़े पैसे दिये।

निरालाजी के साहित्य में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का उल्लेख आता है। वे रामकृष्ण और विवेकानन्द की धार्मिक उदारता से प्रभावित थे। वे 'युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण' नामक लेख लिखते हैं – ''श्रीरामकृष्ण की सारी साधनाएँ जगत को आध्यात्मिक शिक्षा देने के लिए थीं। वे युगावतार थे। लोक कल्याणार्थ अनेक धर्मों का एकत्व दर्शाने के लिए आये थे। उनकी साधनाएँ लोगों को धर्म मार्ग का सार समझाने हेतु थीं। इसके फलस्वरूप स्वामी विवेकानन्द ने सर्वधर्मों की एकता और वेदान्त की सार्वभौमता का प्रचार किया। रामकृष्ण और विवेकानन्द का यह धार्मिक उदार मतवाद केवल राष्ट्रीय एकता में ही नहीं, अपितु विश्वबन्धुत्व की भावना में परिणत हुआ।'' 'भारत में श्रीरामकृष्ण अवतार' लेख में वे लिखते हैं, 'आज विश्व में जो विश्व बन्धुत्व की भावना वृद्धिगत हो रही है; वह सर्वप्रथम श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से निकली है। विश्वविजयी वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द की वीर वाणी सारा संसार मंत्रमुग्ध होकर सुन रहा है। पर उनकी दैवी शिक्षा श्रीरामकृष्ण देव के चरणों के पास संपन्न हुई थी। आज भारत में जो एकता दिखती है, उसके माली हैं – श्रीरामकृष्ण।'' 'सामाजिक जीवन और श्रीरामकृष्ण' लेख में निरालाजी ने राष्ट्रीय एकता पर विशेष जोर दिया है। वे कहते हैं श्रीरामकृष्ण ने सभी धर्मों का अंतिम लक्ष्य प्राप्त कर लिया था। अत: वे किसी एक जाति-धर्म के नहीं थे। वे विश्व के सभी सम्प्रदायों के अन्तरंग थे। उन्होंने सभी को उपदेश दिया कि 'मेरा ही धर्म सत्य और अन्य धर्म असत्य है, ऐसा नहीं कहना चाहिए।' 'चोटी की पकड़' नामक उपन्यास में उन्होंने स्वामी विवेकनन्द जी की पावन स्मृति को समर्पित की है। 'वेदान्त-केसरी स्वामी विवेकानन्द' नामक लेख में निराला जी लिखते हैं विदेश से लौटने पर स्वामीजी ने रामकृष्ण संघ को नई दिशा दी। उन्होंने सत्य सनातन धर्म के उदारभाव का प्रसार करने हेतु बंगाली में 'उद्बोधन' और अंग्रेजी में प्रबुद्ध-भारत नामक दो मासिक पत्रिका आरम्भ की। 'समन्वय' मासिक के रूप में अब हिन्दी में यह कार्य आरम्भ हुआ है।

''भगिनी निवेदिता को उन्होंने प्रथम उपदेश दिया था – 'भारत से प्रेम करो।' निवेदिता ने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत माता के चरणों में समर्पित कर दिया। कलकत्ता के बागबाजार में निवेदिता ने एक बालिका विद्यालय प्रारम्भ किया। वहाँ उन्होंने शिक्षिका के रूप में कार्य किया। विलासिता के नंदनवन में पली-बढ़ी उस स्वाधीन कोकिला ने भारत प्रेम के कारण बागबाजार की गंदी गलियों में घूमना

पसन्द किया। जो भारतीय स्वामीजी से प्रश्न करते थे कि हम किसका त्याग करें? उस पर स्वामीजी कहते थे ''आप के पास त्याग करने के लिये क्या है?'' पश्चिमी देशों के लोगों के लिए वे कहते थे, उन्होंने भोगरूपी मदिरा प्राशन किया है, अब उन्हें त्याग की आवश्यकता है। अमृत सत्य की जरुरत है।'' जिस प्रकार स्वामीजी भारत के सच्चे नायक माने जाते हैं, उसी प्रकार वे बंगाली भाषा के युग-प्रवर्तक लेखक भी थे। अपने सीमित जीवनकाल में उन्होंने अधिकांशत: अंग्रेजी में लेखन किया। परन्तु उनका अल्प बंगाली लेखन युगप्रवर्तक है। उनके लेखन का तेज और प्रवाह अन्य जगह नहीं दिखता।''

निरालाजी ने 'श्रीरामकृष्णकथामृत' नामक बंगाली ग्रंथ का हिन्दी में सरस अनुवाद किया है। स्वामी विवेकानन्द के राजयोग, परिव्राजक, भारतीय व्याख्यान इन ग्रंथों का भी हिन्दी में अनुवाद किया है। उनके 'कैलास में शरद' नामक कविता में वर्णन आता है। कवि स्वप्न में कैलास यात्रा पर जाता है। जिसका नेतृत्व श्रीमाँ सारदा देवी करती हैं। उनके पीछे-पीछे स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य जाते हैं। निरालाजी ने भगिनी निवेदिता के जीवन और कार्य पर प्रकाश डालनेवाली 'अपरा' नामक काव्य संग्रह लिखा। उनकी 'राम की शक्ति पूजा' कविता स्वामी सारदानन्द जी की 'भारत में शक्ति पूजा' पुस्तक की स्मृति जागृत करती है। अपने 'नाटक' नाम के लेख में वे महान नाटककार गिरीशचन्द्र घोष की नाट्यशैली के विषय में लिखते हैं। उन्होंने लिखा है, ''भारत के प्रान्तीय साहित्य में बंगाली भाषा का स्थान सर्वोच्च है। गिरीशचन्द्र घोष ने पौराणिक नाटकों में बोल-चाल की सरल-सुगम भाषा का प्रयोग कर के सामाजिक और साहित्य क्षेत्र में नई चेतना जागृत की थी।''

इस प्रकार कई जगह निरालाजी के समग्र वाङ्मय (आठ खंडों में प्रकाशित) में रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा का उल्लेख हम पाते हैं। पाठकों को सुविधा के लिये इसकी सूची प्रदान कर हम लेख की समाप्ति करते हैं।

पाठकों की सुविधा हेतु निराला रचनावली में उल्लिखित रामकृष्ण भावधारा सम्बन्धी प्रसंगों का उल्लेख कर रहें हैं, जिससे पाठक स्वयं गहराई से अध्ययन कर निरालाजी के योगदान को समझ सकें।

निराला रचनावली – खण्ड-१. कविता सेवा प्रारम्भ पृ.३३३, स्वामीजी की कविताएँ, गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को, समाधि, नाचे उस पर श्यामा, क्षमा प्रार्थना, सखा के प्रति, सागर के वक्ष पर, शिव संगीत - २ पृ. ३६३-३९४

खण्ड-२. कविता - स्वामी प्रेमानन्द पृ. ८९-१०४, युगावतार परमहंस श्रीरामकृष्णदेव के प्रति पृ.१९२-१९३, कैलास में शरत् पृ.२००-२०३, ४ जुलाई के प्रति पृ.२२०, काली माता पृ. २२१

खण्ड-३. उपन्यास निरुपमा - २ पृ. ३५४

खण्ड-४. चोटी की पकड़-३ पृ. १३१-१३३, स्वामी सारदानन्द और मैं, पृ.३६६-३७१, चतुरी चमार, भक्त और भगवान (स्वामी प्रेमानन्द) पृ. ३९६-४०२

खण्ड-५. साहित्य की समतल भूमि पृ.१६० नाटक (आचार्य गिरीशचन्द्र घोष) पृ. ५००-५०४ 'प्रबन्ध पद्य' का समर्पण स्वामी सारदानन्द जी को पृ.५३१

खण्ड-६. भारत में श्रीरामकृष्णावतार पृ.३०, जातीय जीवन और श्रीरामकृष्ण-४०, शक्ति परिचय (श्रीरामकृष्ण और स्वामी सारदानन्द कृत भारत में शक्ति पूजा सार) पृ. ५५-५९, परमहंस श्रीरामकृष्णदेव पृ.५९, श्रीमत् स्वामी सारादनन्द जी से वार्तालाप पृ.७३, युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण पृ.८०-९२, वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द पृ.८४, वर्तमान हिन्दू समाज (रामकृष्ण मठ) पृ.१०८-११५, सामाजिक पराधीनता (स्वामी अद्भुतानन्द) पृ.१३३-१३८, अर्थ (स्वामी सारदानन्द) पृ. १३८-१३९, वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द और भारत पृ. १४२, श्री रामकृष्ण मिशन लखनऊ पृ. १८८ भारत की राष्ट्र भाषा (स्वामी माधवानन्द) पृ.२९७-२९९, किसान और उनका साहित्य (दरिद्रनारायण सेवा) पृ. ४४२-४४४, श्रीरामकृष्ण आश्रम? OOO ***(समाप्त)***

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** चतुरी चमार हिन्दी लेखक-सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' पृ.६३-६७, **२.** विवेक ज्योति जुलाई-अगस्त-सितम्बर १९९५ पृ.७५-८४ लेख - निराला की स्मृतियों में स्वामी प्रेमानन्द लेखक - स्वामी विदेहात्मानन्द, अक्तूबर-नवम्बर-दिसम्बर १९९५ पृ.७२-७८ लेख स्वामी सारदानन्द और मैं लेखक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।, **३.** निराला रचनावली खंड-२ पृ.८९-१०४ कविता स्वामी प्रेमानन्द।, **४.** निराला रचनावली खंड-६, पृ.७३-७४ लेख श्रीमत् स्वामी सारदानन्द जी महाराज से वार्तालाप।, **५.** निराला रचनावली खंड-१ पृ. ३३३-३३५ कविता सेवा-प्रारम्भ।, **६.** प्रबुद्ध भारत (अंग्रेजी मासिक) अगस्त १९०९ पृ.४६, **७.** अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द (हिन्दी) लेखक - चंद्रशेखर चट्टोपाध्याय पृ.२८०-२८१

दृग्-दृश्य-विवेकः (११)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यत: 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

प्रातिभासिक तथा व्यावहारिक जीव

उपरोक्त तीन दृष्टिकोणों से परिकल्पित जीवों के बीच क्या भेद है? अगले तीन श्लोकों में यही बताया गया है –

प्रातिभासिकजीवो यस्तज्जगत् प्रातिभासिकम् ।
वास्तवं मन्यतेऽन्यस्तु मिथ्येति व्यावहारिकः ।।४०।।

अन्वयार्थ – (सपने में दिखनेवाला) **यः** जो **प्रातिभासिकः** प्रातिभासिक **जीवः** जीव है, (**सः** वह) (सपने में दिखनेवाले) **तत्** उस **प्रातिभासिकं** प्रातिभासिक **जगत्** जगत् को **वास्तवं** वास्तविक **मन्यते** समझता है, **तु** परन्तु **अन्यः** दूसरा **व्यावहारिकः** व्यावहारिक **जीवः** जीव (उसे) **मिथ्या** मिथ्या **इति मन्यते** समझता है।

भावार्थ – जो (सपने में दिखनेवाला) प्रातिभासिक जीव है, (वह) (सपने में दिखनेवाले) उस प्रातिभासिक जगत् को वास्तविक समझता है, परन्तु दूसरा व्यावहारिक जीव (उसे) मिथ्या समझता है।

व्यावहारिकजीवो यस्तज्जगद्व्यावहारिकम् ।
सत्यं प्रत्येति मिथ्येति मन्यते पारमार्थिकः ।।४१।।

अन्वयार्थ – **यः** जो **व्यावहारिकः** व्यावहारिक **जीवः** जीव है, **सः** वह **तत्** उस **व्यावहारिकं** व्यावहारिक **जगत्** जगत् को **सत्यं** वास्तविक **प्रत्येति** समझता है, (परन्तु) **पारमार्थिकः** पारमार्थिक (जीव) (**तत्** उसे) **मिथ्या इति** मिथ्या **मन्यते** समझता है।

भावार्थ – व्यावहारिक जीव, इस व्यावहारिक जगत् को वास्तविक समझता है, (परन्तु) पारमार्थिक (जीव) (इसे) मिथ्या समझता है।

पारमार्थिक जीव का स्वरूप

पारमार्थिक जीव – स्वप्न के प्रातिभासिक तथा जाग्रत के व्यावहारिक जीव से भिन्न और ब्रह्म से अभिन्न है –

पारमार्थिकजीवस्तु ब्रह्मैक्यं पारमार्थिकम् ।
प्रत्येति वीक्षते नान्यद्वीक्षते त्वनृतात्मना ।।४२।।

अन्वयार्थ – **तु** परन्तु **पारमार्थिक** पारमार्थिक (वास्तविक) **जीवः** जीव – **ब्रह्मैक्यं** ब्रह्म से (अपनी) एकता को **पारमार्थिकं** वास्तविक **प्रत्येति** समझता है, (वह) **अन्यत्** (स्वयं से भिन्न) दूसरे को **न वीक्षते** नहीं देखता; **तु** परन्तु (यदि कुछ अन्य देखता है, तो उसे) **अनृतात्मना** मिथ्या-रूप ही **वीक्षते** देखता।

भावार्थ – परन्तु पारमार्थिक (वास्तविक) जीव – ब्रह्म के साथ अपनी अभिन्नता को वास्तविक समझता है। (वह) (स्वयं से भिन्न) दूसरे को नहीं देखता; परन्तु (यदि कुछ अन्य देखता है, तो उसे) मिथ्या-रूप ही देखता।

ज्ञानयोग है ज्ञान के द्वारा ईश्वर के साथ युक्त होने का उपाय। ज्ञानयोग में ज्ञानी साधक ब्रह्म को जानना चाहता है। वह 'नेति' 'नेति' विचार करते हुए एक-एक करके मिथ्या वस्तुओं का त्याग करता जाता है। जहाँ विचार समाप्त हो जाता है, वहाँ समाधि होती है, ब्रह्मज्ञान होता है।

चोर घर में घुसकर अँधेरे में वस्तुओं को टटोलता है। मेज पर हाथ रखा, 'यह नहीं' कहकर छोड़ दिया। फिर शायद कुर्सी पर हाथ रखा, उसे भी 'यह नहीं' कहकर छोड़ दिया। इस तरह 'यह नहीं' 'यह नहीं' ('नेति' 'नेति') करते हुए एक के बाद एक वस्तुओं की छानबीन करते-करते अन्त में उसका हाथ तिजोरीवाली पेटी पर पड़ जाता है। तब वह 'यह है!' ('इति') कह उठता है, और वहीं उसकी खोज समाप्त हो जाती है। ब्रह्म का अनुसन्धान भी इसी प्रकार है।

मैंने देखा है कि विचार के द्वारा जो ज्ञान होता है वह एक किस्म का है और ध्यान के द्वारा जो ज्ञान होता है वह और एक किस्म का; फिर उनके साक्षात्कार से जो होता है वह कुछ और ही है!

– श्रीरामकृष्ण देव

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२८)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भुतहा मकान

आलमबाजार मठ में स्वामी रामकृष्णानन्द, शिवानन्द, अद्भुतानन्द, तुरीयानन्द, सच्चिदानन्द आदि केवल कुछ लोग ही निवास करते थे। बाकी लोग जब आते, तो वे भी रहते। उन दिनों महिम (स्वामीजी का भाई महेन्द्रनाथ दत्त) मठ में आवागमन करता था।

एक दिन सन्ध्या होने के पूर्व, स्वामी तुरीयानन्द और महिम थोड़ा घूमने के लिये मुख्य दरवाजे से बाहर निकले, परन्तु तुरीयानन्द उसी समय सहसा बड़ी व्यग्रता के साथ मठ के भीतर लौट आये। महिम थोड़ा विस्मित होकर वहीं खड़ा रहा। उनके बाहर आते ही पूछने पर महिम को पता चला कि किसी व्यक्ति ने भीतर प्रवेश किया है। स्वामी तुरीयानन्द ने महिम से यह भी कहा, ''क्या तुमने नहीं देखा कि एक व्यक्ति मकान के भीतर चला गया? मैंने भीतर जाकर खोजा, परन्तु कोई दिखाई नहीं दिया। इसे जो 'भुतहा मकान' कहते हैं, वह गलत नहीं है।''

स्वामी अखण्डानन्द

एक अन्य दिन एक दूसरी मजेदार घटना हुई। उस समय मैं वहाँ उपस्थित नहीं था। सुना है कि उस दिन स्वामी योगानन्द, प्रेमानन्द, सारदानन्द आदि कई लोग बागबाजार से मठ में आये और रात में वहीं निवास किया। भीतर पश्चिम की ओर के कमरे में शायद पाँच लोग थे। बाहर के बड़े कमरे में स्वामी सारदानन्द और (स्वामीजी के प्रथम संन्यासी शिष्य) सदानन्द थे। आधी रात के समय छत के ऊपर से गड़-गड़, गड़-गड़ की आवाज आने लगी। वह ध्वनि सुनकर सभी लेटे-लेटे ही एक-दूसरे से कहने लगे, ''अजी, लगता है कोई भूत गेंद खेल रहा है। ओ दादा! ओ रामकृष्णानन्द, हमें यह गेंद का खेल दिखाने के लिये लाया है क्या?'' प्रेमानन्द बोले, ''ओ दादा, ओ योगेन!'' आदि आदि। इस पर स्वामी रामकृष्णानन्द ने खूब उत्तेजित होकर एक बड़ा लट्ठ हाथ में लिया और 'तेरे भूत के बाप का श्राद्ध करता हूँ' कहकर ''मारो, मारो'' की आवाज के साथ तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ते हुए छत पर जा पहुँचे। उन्होंने देखा कि वहाँ एक जोड़ा मुगदर और एक जलती हुई लालटेन पड़ी हुई है। वे तत्काल बोल उठे, ''अरे, भूत क्या लालटेन लेकर मुगदर भाँजता है?'' इतना कहने के बाद वे सदर द्वार से मकान में गये और सारदानन्द के कमरे में जाकर उन्हें पकड़ लिया। निरर्थक ही भयभीत होने के कारण प्रेमानन्द, शिवानन्द, तुरीयानन्द आदि लज्जित हुए और सदानन्द तथा सारदानन्द की शैतानी पकड़ में आ जाने के कारण वहाँ सबकी हँसी का मानो फव्वारा ही फूट पड़ा।

मठ में लौटने के बाद मैंने देखा कि भूत के भय से अद्भुतानन्द सारी रात अपने कमरे में एक लालटेन जलाये रखते थे।

दक्ष ॠषि – ज्ञानानन्द

मठ में मेरे निवास के समय स्वामी ज्ञानानन्द को अनेक लोग 'दक्ष ॠषि' के नाम से सम्बोधित करते थे। वह पहले साधारण ब्राह्म-समाज का सदस्य था और बीच-बीच में ठाकुर के पास आया करता था। उसके सरल स्वभाव के कारण स्वामीजी का उसके प्रति बड़ा स्नेह था और उन्होंने उसे वराहनगर मठ में लाकर संन्यास भी दिया था। वैसे उन दिनों मैं तिब्बत और हिमालय गया हुआ था। अनुमान है कि १८९१ ई. के दौरान, मेरी उसके साथ पहली बार मेरठ में मुलाकात हुई थी।

अभेदानन्द तथा निर्मलानन्द के साथ उत्तराखण्ड की यात्रा पूरी करने के बाद ज्ञानानन्द पंजाब चला गया। वहाँ तत्कालीन उदासी सम्प्रदाय के मण्डलेश्वर दयालदास जी और कृपाराम जी के पास रहकर, साधु निश्चलदास जी के

'वृत्ति-प्रभाकर' तथा 'विचार-सागर' ग्रन्थों का अध्ययन करके उसने वेदान्त-विषयक युक्तिसंगत चर्चा करने की क्षमता प्राप्त कर ली थी। ज्ञानानन्द ने किसी पंजाबी अवधूत से पारा-भस्म, हरताल-भस्म आदि औषधियाँ और कीमियागिरी (alchemy) अर्थात् सोना-चाँदी बनाने की प्रणाली जानकर उसे एक बड़े खाते में लिख लिया था। उसके मठ में लौट आने पर स्वामी प्रेमानन्द ने उसके उस परम प्रिय खाते को जला डाला था।

मेरठ में मैंने उसे काफी अच्छी हालत में ही देखा था। मेरठ से मैं स्वामी अद्वैतानन्द के साथ हरिद्वार के कुम्भ में गया। इसके तीन-चार महीनों बाद ही ज्ञानानन्द घोर उन्मत्तता की हालत में वृन्दावन पहुँचा। उन दिनों मैं वृन्दावन में ही उपस्थित था।

यहाँ पर मैं ज्ञानानन्द (दक्ष) के विषय में कुछ अन्य बातें भी कहूँगा। जब वह वृन्दावन में आया, उस समय उसके हाथों में एक अधजली लाठी और एक हण्डी बालू था। वह लकड़ी के उस सोटे को 'बलराम का हल' और उस हण्डी में भरे हुए बालू को 'वृन्दावन का रज' बताया करता था। उसकी यह शोचनीय दशा देखकर पहली रात तो मैं बड़ा ही मर्माहत रहा। सोचा – उसके पास रहकर उसकी बातें सुनते रहने से शायद उसकी हालत में कुछ सुधार हो।

पहली रात मैं अपने स्थान पर न जाकर, उसके पास ही – कालाबाबू के कुंज में ठहरा। वह मुझे सारी रात कमरे के बाहर जागते रहने को कहकर स्वयं निरन्तर अनर्गल भाव से देवी-देवताओं के नाम बोलने लगा। इसके बाद वह कचरे की ढेर में पड़ी हुई सारी हण्डियों को उठा लाया और उस 'बलराम के हल' से उन्हें फोड़ने लगा।

रात अधिक हो जाने पर मैं थोड़ा तन्द्राच्छन्न हो गया था, तभी देखा कि वह अपनी 'वृन्दावन की रज' मेरे मुख में डालने का प्रयास कर रहा है। इस पर मैंने उसे खूब खरी-खोटी सुनाई। बोला, "ऐसा करने पर मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगा।" इस पर वह थोड़ा नरम पड़ गया।

उसे कलकत्ते लौटाने हेतु पल्टू बाबू (एटार्नी पी. सी. कर) ने उसके मार्ग-व्यय के लिये रुपये भेज दिये थे। उसे यह सूचना देने पर वह कलकत्ते जाने को राजी हुआ। परन्तु रात बीतने के बाद 'दक्ष' पहलेवाला व्यक्ति नहीं रह जाता था। वह अत्यन्त गन्दे कचरे की ढेर में जाकर नंगा बैठ जाता और उत्पात आरम्भ कर देता। यदि कोई उसे पकड़ने जाता, तो वह अपने दोनों हाथों के बड़े-बड़े नाखूनों से नोचने का प्रयास करता। इसी भय के कारण कोई उसके पास जाने का साहस नहीं करता। धूप जितनी ही चढ़ती, उसकी उन्मत्तता भी उतनी ही बढ़ती जाती और सूर्यास्त के बाद उसमें कमी आ जाती। तब वह भूख से कातर हो उठता। मैं श्री राधारमण जी के सान्ध्य-भोग (व्यालू) का प्रसाद लाकर उसे खिलाया करता।

इसी प्रकार कई दिन बीत जाने के बाद, राधारमणजी के एक वरिष्ठ तथा विद्वान् गोसाईजी ने मुझे उसके कहने के विपरीत आचरण करने को कहा और उसकी हण्डी, सोटा तथा 'वृन्दावन की रज' आदि को भी फेंक डालने का परामर्श दिया। तदनुसार एक-एक करके मैंने उस पागल के 'बलराम का हल' तथा 'रज' आदि को फेंक दिया। उन चीजों के फेंक दिये जाने के बाद, दक्ष के विकट चीत्कार को सुनकर केशीघाट के बहुत-से लोग दौड़कर कालाबाबू के कुंज तक आ पहुँचे थे।

इसके बाद से मैं दक्ष के कहने के अनुसार कोई भी काम नहीं करता। भयंकर गर्मी पड़ रही थी। प्रचण्ड धूप के दौरान, यमुना के तट पर बालू हटाकर दो-ढाई हाथ गहरा एक गड्ढा बनाने के बाद, उसी के भीतर बैठकर दक्ष मुझसे अपनी धूनी के लिये काठ ले आने को कहता। मैं सोचता – यह पागल यदि धूनी जलाकर बैठ जाय, तो फिर कोई भी उसके निकट नहीं जा सकेगा।

दक्ष को कलकत्ते पहुँचाने के निमित्त एक दिन मैं उसे मथुरा स्टेशन पर ले गया। ताँगे से उतरने के बाद उसने अकेले ही कलकत्ते जाने की बात कही और रुपये माँगे। मेरे मना करते ही वह मुझे मारने को तैयार हो गया। तभी एक कांस्टेबल ने आकर दक्ष को पकड़ लिया। मैंने कांस्टेबल को समझाया कि यह पागल मेरा ही आदमी है। तब उसने दक्ष को छोड़ दिया। इसके बाद उसने कोई गड़बड़ी नहीं की और मेरे साथ वृन्दावन लौट आया। बाद में मैंने उसे कालाबाबू-कुंज के दरबान हरिसिंह के साथ कलकत्ते भेजा।

अमेरिका से लौटने के बाद स्वामीजी दक्ष को दार्जिलिंग ले गये। रास्ते में दक्ष के पागलपन के कारण उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था। अमेरिका से लौटने के बाद उसकी ऐसी शोचनीय हालत देखकर स्वामीजी बड़े व्यथित हुए थे। उसे स्वस्थ करने का यथासाध्य प्रयास करने पर भी वे उसकी हालत में कोई सुधार नहीं ला सके। **(क्रमशः)**

भगवान की भक्ति के बिना जीवन कष्टमय होता है

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

संसार में जो कर्तव्य मिला है, उसे आनन्द से करें। उस समय अगर भगवान की भक्ति और उनके प्रति प्रेम नहीं रहा, तो बहुत दुख, कष्ट होता है। इसलिए संसार से अनासक्त होकर हम भगवान के सान्निध्य में रहें। यदि परिवार में अधिक आसक्ति हो जाए, तो उससे अनासक्त होने के लिए और भगवान से अपनत्व के लिये प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान से प्रार्थना करने से मन में शान्ति मिलेगी। संसार से आशा रखना ही बहुत बड़ा बन्धन है। इस नश्वर संसार से कभी आशा न करें। यदि आशा करना ही है, तो संसार को छोड़कर प्रभु से ही आशा करनी चाहिए। क्योंकि कठिनाइयों के समय में भगवान ही हमारी रक्षा और कल्याण करते हैं।

उम्र हो जाने के बाद यह संसार अच्छा नहीं लगता है, इसलिए जितना आवश्यक है, उतना ही संसार का कर्तव्य कर्म करना चाहिए और बाकी समय को भगवान में लगाना चाहिए। संसार के हमारे ताने-बाने हमको ही बाँधकर रखते हैं। इन सब बातों से छूटने के लिए भगवान का नाम-जप और उनके शरणागत होकर रहना चाहिए। दैनिक जीवन में यदि हम अपेक्षायें करेंगे, तो हमें दुख-कष्ट होगा। इसलिए हमें निरपेक्ष रहने की आदत डालनी है। मुख्य बात हमें यह सोचना चाहिए कि हम क्या चाहते हैं? हम क्या करना चाहते हैं? जवानी वापस नहीं आयेगी, लेकिन हम सोचते हैं कि हम जवानी में जैसे थे, वैसे इस वृद्धावस्था में भी रहेंगे, जो कभी सम्भव नहीं है। शरीर पर वर्षों का उम्र का प्रभाव पड़ता है, शरीर दुर्बल हो जाता है, पर मन युवा रहता है। इसलिए संयम से रहना है, नहीं तो शरीर की दुर्गति होती है। शरीर स्वस्थ रहते-रहते भगवान का नाम लेने की आदत डालें। अस्वस्थ शरीर होने से तो मन शरीर पर ही जाता है। शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए। इसे सजाकर नहीं रखना है। शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा, तो हम कुछ नहीं कर सकेंगे। बीमार रहने पर हम न संसार का काम कर सकेंगे और न भगवान का नाम ले सकेंगे। शरीर हमारे उपयोग के लिए है। इसलिए संयम से रहकर शरीर को स्वस्थ रखें। इस स्वस्थ शरीर से ही भगवान का भजन होगा। शरीर की स्वस्थता के साथ-साथ खाली क्षणों में भगवान का नाम लेना है और मन को देखते रहना है कि वह कहीं इधर-उधर व्यर्थ स्थानों पर न भटकने लगे। चंचल मन बहुत दुख देता है। मन के भटकाव को बचाने के लिए एक ही सरल उपाय है कि भगवान का नाम लेते रहें और भगवान से प्रार्थना करते रहें। ऐसा करके हम अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

सबसे पहले स्वयं अच्छे बनें। हम अपने में अच्छे संस्कार का निर्माण करें, तभी हम दूसरों को अच्छा, संस्कारी बनने में सहयोग कर सकते हैं। अच्छा संस्कार नहीं रहने से जीवन में दुख होता है। हम अच्छे हैं, तो सारा संसार अच्छा है। प्रत्येक प्राणी को केवल प्रेम और स्नेह से ही वशीभूत किया जा सकता है।

भगवान का नाम लेने से पारिवारिक जीवन में आपको सुख मिलेगा। परिवार में रहने पर एक-दूसरे का ध्यान रखना चाहिए। एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखना चाहिए। परस्पर सहना चाहिए। एक कहावत है, जो सहे सो रहे। जहाँ चार लोग रहते हैं, वहाँ सहना चाहिए, नहीं तो शान्ति से नहीं रह सकते। लोग ताने देते हैं, यदि तुम उसे नहीं सह सकते, तो तुम्हारा जीवन अशान्त हो जाएगा। तुम अपने मुख्य उद्देश्य को भूल जाओगे। गरम दूध में नींबू को डालने से दूध फट जाता है, उसके बाद उसे कितना भी मथो, तो मक्खन नहीं निकलता। प्रेम रूपी मक्खन निकालने के लिये जीवन में संघर्ष और सहनशीलता चाहिए। पृथ्वी में कोई काम ऐसा नहीं है कि वह प्रार्थना से न हो। भगवान से निवेदन या प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवान हमारे दुखों को दूर कर दो, हमें सहने की शक्ति दो और अपने नाम-जप में रुचि दो। ○○○

भय किस बात का? भगवान् को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहो। संसार काँटो से भरा है, तो क्या हुआ? जूते पहन लो और काँटो पर से चलते जाओ। तुम्हें डर किसका?

मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि तुम मेरी बातों का एक आना भी कार्य रूप में परिणत कर सको, तो तुम्हारी मुक्ति निश्चित है।

— श्रीरामकृष्ण देव

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (४०)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

१४ जनवरी, १९०४ : मिस मैक्लाउड को

यदि तुमने अपने प्रयास से हमारे लिये जापान का कार्यक्षेत्र नहीं खोल दिया होता, तो सदानन्द वहाँ कदापि नहीं जाते। मेरा विश्वास है कि स्वामीजी उन्हीं के माध्यम से उस देश में जाना चाहते थे। इसके बाद मैं जो कुछ कहने जा रही हूँ, उसका भविष्य में मेरे अथवा किसी के भी समक्ष कभी उल्लेख मत करना। इसे एक अत्यन्त पवित्र रहस्य के रूप में संरक्षित रखा जाना चाहिये। एक बार स्वामीजी सदानन्द के समक्ष प्रकट हुए थे और उस दौरान उनके साथ बातें भी की थीं। सदानन्द इस प्रसंग से अभिभूत हैं। उन्हें ऐसा महसूस हो रहा है कि वे लक्ष्य तक पहुँच चुके हैं। वे जानते हैं कि यह सब सत्य है और हम लोग पहुँच गये हैं।

२१ जनवरी, १९०४ : मिस मैक्लाउड को

मैंने स्वामीजी से सम्बन्धित एक मधुर स्वप्न देखा। वे अपनी अन्तिम बीमारी के समय लेटे हुए थे। सहसा ऐसा लगा मानो उन्होंने हम सभी को व्यक्तिगत रूप से स्मरण किया हो। उन्होंने बड़े ही मृदु-मधुर भाव से कुछ कहा और इसके बाद वे बोले, "मार्गट, तुम्हें इतना चुपचाप रहने की जरूरत नहीं। अगली बार तुम एक गाड़ी में इस द्वार पर आना; और वह गाड़ी बड़ी खराब होनी चाहिये!" तुम जानती ही हो कि सपने कितने ऊटपटांग होते हैं; परन्तु मैं समझ रही हूँ कि मैंने स्वामीजी के व्यक्तिगत स्नेह का स्मरण किया था और उसी का यह एक छद्मवेश में प्राकट्य था। वे मधुरता पसन्द नहीं करते थे। वे खूब जानना चाहते थे कि कोई व्यक्ति क्यों उनके पास आया है!

१७ मार्च, १९०४ : मिस मैक्लाउड को

वर्षों के चक्र के बीच, एक बार फिर हम लोग उन्हीं दिनों में लौट आये हैं। अगले शुक्रवार, २५ मार्च को मेरा जन्मदिन होगा; उसी दिन मुझे पहली बार 'निवेदिता' कहा गया था। तो फिर हम सातवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। यह भी उनकी सेवा में लगकर धन्य हो जाय! मेरी इच्छा है कि यह निर्दोष तथा सार्थक सिद्ध हो, परन्तु यह आकांक्षा थोड़ी अधिक ही प्रतीत होती है।

क्या तुम्हें याद है – कीरो[१] ने भविष्यवाणी की थी कि ४२वें से ४९वें वर्ष के दौरान मेरी मृत्यु हो जाएगी? इस समय मेरा ३६वाँ चल रहा है। अत: मुझे लगता है कि मैं इस पूरे चक्र को देखूँगी। मेरा अनुमान है कि १९१२ ई. में मेरी मृत्यु होगी।[२]

युम, इन वर्षों के दौरान क्या भारत की स्थिति में कोई परिवर्तन होगा? क्या मैं देख सकूँगी कि मैं स्वामीजी के कुछ काम आ सकी थी? मैं तो केवल यही चाहती हूँ, यही चाहती थी और भविष्य में भी सर्वदा केवल यही चाहूँगी कि मुझे उनके लिये उनका कोई भार वहन करने का सौभाग्य मिले। यदि मैं केवल इतना ही अनुभव कर पाती कि – पृथ्वी के इस ओर मैं उनके कार्य में लगी हूँ, अत: उनकी महान् आत्मा – उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर सहज भाव से आनन्द तथा लीला में प्रतिष्ठित है, तो इस अनुभूति में ही मेरे लिये सब कुछ – मेरा स्वर्ग और मेरा अनन्त जीवन निहित है। मुक्ति की मैं जरा भी परवाह नहीं करती। मेरी यह बात तुम्हें भले ही बेतुकी प्रतीत हो, तथापि मैं यह तक नहीं चाहती कि वे मेरे पापों को क्षमा करें या मेरे प्रति मधुरता दिखाएँ। व्यक्तिगत रूप से मैं उनके साथ अपने सम्पर्क की परवाह नहीं करती। मैं तो केवल उनके कार्यभार का बोझ वहन करना चाहती हूँ, ताकि वे उन्मुक्त भाव से परमात्मा का रसास्वादन कर सकें। अहा, वह कैसी आत्मा है, जिसके विषय में व्यक्ति ऐसा स्वप्न देख सके और जान भी ले कि यह सत्य है! क्या यह स्वयं ईश्वर ही हो जाना नहीं है? **(क्रमश:)**

सिस्टर निवेदिता

१. इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध हस्तरेखाविद् तथा भविष्यवक्ता

२. उनका देहान्त १९११ ई. के अक्तूबर माह में हुआ था।

साधुओं के पावन प्रसंग (१६)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

इतिहास किनको याद रखता हैं? उसके पन्नों में किन्हें स्थान मिलता है? इतिहास के स्वर्ण-नाव में छोटा और संकीर्ण स्थान होता है। इसलिये इसमें बहुत सूक्ष्म विचार करके यात्रियों को चढ़ाया जाता है। इस नाव में साधारण लोगों का स्थान तो होता ही नहीं, धनी-विलासी लोगों का भी स्थान नहीं होता। इस नाव में वही यात्री स्थान पाते हैं, जिन्होंने लोक-कल्याणार्थ सर्वाधिक दान किया है या जगत को नि:स्वार्थ कुछ नया प्रदान किया है। जो व्यक्ति कर्म, त्याग द्वारा पृथ्वी पर कुछ चिन्ह छोड़ कर चले गये हैं, इतिहास उनलोगों का ही अनुसरण तथा स्मरण करता है। स्वामी गम्भीरानन्द महाराज रामकृष्ण संघ के इसी प्रकार के एक अनुकरणीय तथा स्मरणीय संन्यासी थे।

स्वामी गम्भीरानन्द

कहा जाता है कि कीर्ति और यश जीवित रहते हैं - अर्थात् कीर्तिमान पुरुष ही जीवित रहता है और अकीर्तिमान व्यक्ति मृत होता है। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज अपने कर्म और अद्भुत ग्रन्थों के माध्यम से युग-युग तक जीवित रहेंगे। अँग्रेजी, बंगला और संस्कृत – इन तीन भाषाओं में उनके द्वारा रचित, संकलित और अनुवादित ग्रन्थ रामकृष्ण संघ तथा अध्यात्म जगत की महान सम्पत्ति हैं। अभी भी अनेक साधु और भक्तों द्वारा उनके अभूतपूर्व जीवन एवं चरित्र की चर्चा की जाती है। साधु-समाज में एक कहावत प्रचलित है – साधुगण, जिस संन्यासी के सामने मस्तक झुकाते हैं, उसके भीतर अवश्य ही सार वस्तु होती है।

शूर-वीरपूजा, वीरपूजा या चरित्रपूजा पृथ्वी के सब देशों तथा सब जातियों के भीतर पाया जाता है। हमारे देश में भी राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, रामकृष्ण से लेकर अनेक संन्यासी, समाजसेवक, लेखक, कवि, नेता सभी पूजा और श्रद्धा पाते आ रहे हैं। यह स्वभाविक नियम है। मानव महान पुरुषों के सामने नत-मस्तक होकर श्रद्धा ज्ञापित किये बिना नहीं रह सकता। ये लोग ही रोल मॉडल – समाज के आदर्श, मार्गदर्शक होते हैं। महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से एक प्रश्न पूछा था – ''पथ क्या है?'' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया – वेद बहुत हैं, श्रुति बहुत हैं, ऐसे ऋषि-मुनि नहीं, जिनके विचार भिन्न-भिन्न नहीं हैं। धर्म का तत्त्व गूढ़ है। अत: महान संन्यासीगण जिस पथ से गये हैं, वही पथ है।'' स्वामी गम्भीरानन्द ऐसे ही एक साधु थे, जिन्होंने स्वयं आदर्श साधु-जीवन व्यतीत करके दूसरे लोगों का पथ-प्रदर्शन किया है। यही आचार्य का लक्षण है।

इस जगत में अभी किसका अभाव सबसे अधिक अनुभव होता है? ७ जून, १८९६ को स्वामीजी निवेदिता को लिखते हैं, ''जगत में अभी धर्म आदि प्राणहीन मिथ्या अभिनय पर्यवसित है। जगत में अभी सबसे अधिक आवश्यकता चरित्र की है। जगत में अभी उन लोगों की आवश्यकता है, जिनका जीवन प्रेमपूर्ण तथा स्वार्थशून्य हो।'' रामकृष्ण-विवेकानन्द के अनुगामी स्वामी गम्भीरानन्द महाराज हमलोगों के सामने ऐसा ही एक आदर्श चरित्र रख गये हैं। एक बार मिशन कार्यालय के सामने एक संन्यासी महाराज ने मुझसे गम्भीर महाराज के सम्बन्ध में कहा, ''इनकी कोई व्यक्तिगत समस्या नहीं थी। वे दिनरात रामकृष्णरूपी संघ की सेवा करते। इनके साथ कार्य करके आनन्द पाता हूँ।'' महाराज उस समय मठ-मिशन के महासचिव थे। **(क्रमशः)**

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में रामकृष्ण प्रार्थना-मन्दिर प्रतिष्ठापन-समारोह सम्पन्न हुआ

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भावप्रचार परिषद् के अन्तर्भुक्त विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में २९ जनवरी, २०२० को स्वामी त्रिगुणातीतानन्द

जी महाराज की जयन्ती पर नवनिर्मित रामकृष्ण प्रार्थना-मन्दिर में भगवान श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी की पावन प्रतिमा की स्थापना रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज के कर-कमलों से सुसम्पन्न हुआ। इस उपलक्ष्य में विद्यापीठ में 'रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन नवनिर्मित पांडाल में किया गया, जिसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

उद्घाटन समारोह – २८ जनवरी, २०२० स्वामी विवेकानन्द-विचार-चिन्तन हेतु समर्पित था। प्रथम सत्र प्रात: १० से ११.३० चला। इसकी अध्यक्षता रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और रामकृष्ण मिशन, शिलांग के अध्यक्ष स्वामी सर्वभूतानन्द जी ने की। वक्ता थे स्वामी सेवाव्रतानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द। द्वितीत सत्र १२ बजे की अध्यक्षता स्वामी राघवेन्द्रानन्द ने की। स्वामी नित्यज्ञानानन्द और शरद विवेक सागर वक्ता थे। भोजनोपरान्त

३ से ४ बजे तक भजन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए। तृतीय सत्र अपराह्न ४ बजे प्रारम्भ हुआ, जिसकी अध्यक्षता रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने की। वक्ता थे स्वामी निखिलेश्वरानन्द और स्वामी आत्मश्रद्धानन्द। सन्ध्या ७ बजे कैलाश यादव द्वारा 'गीति विवेकानन्द' का गायन हुआ।

२९ जनवरी को प्रात: ६.३० बजे वह चिर प्रतीक्षित दिवस आया, जब नये मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठित भगवान श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा का लोकार्पण किया गया। प्रात: ६.३० बजे पुराने चित्रपटों को लेकर नये मन्दिर की ओर प्रस्थान किया गया। आगे-आगे विवेकानन्द विद्यामंदिर, नारायणपुर के बच्चे बहुरंगे वस्त्र में सजकर हारमोनियम, मृदंग वाद्य के साथ छत्तीसगढ़ी नृत्य करते हुए आगे चल रहे थे। उसके पीछे सन्तगण 'रामकृष्णशरणम्' गाते हुए चल रहे थे। उसके बाद स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज आत्माराम का कलश लेकर चल रहे थे। तदनन्तर पुराने मन्दिर से स्वामी सर्वभूतानन्द जी ठाकुरजी की, स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी श्रीमाँ की और स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी स्वामीजी की, प्रतिमा को लेकर चल रहे थे। मन्दिर की तीन परिक्रमा करने के बाद मुख्य द्वार का उद्घाटन स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने किया। श्रीरामकृष्ण की जयध्वनि के साथ सबने मन्दिर में प्रवेश किया। ठाकुर-माँ-स्वामीजी को अर्घ्य-प्रणाम निवेदन के बाद सन्तों ने नृत्य किया।

आज का प्रथम सत्र प्रात: १० बजे से १.३० तक चला। यह सत्र श्रीरामकृष्ण लीला-चिन्तन हेतु समर्पित था। इस सत्र की अध्यक्षता छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री श्री भूपेश बघेल ने की। मुख्य अतिथि थे स्वामी गौतमानन्द जी महाराज और वक्ता थे स्वामी सत्यरूपानन्द जी और स्वामी व्याप्तानन्द जी। विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित विवेक-विद्या स्मारिका का विमोचन भी अतिथियों द्वारा किया गया।

अपने वक्तव्य में विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़ में रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के प्रचार-प्रसार के अग्रदूत रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

के संस्थापक सचिव पूज्यपाद ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के अप्रतिम योगदान का उल्लेख किया। रामकृष्ण

मठ, नागपुर में निवास के दौरान श्रीरामकृष्ण के शिष्य स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी महाराज ने स्वामी आत्मानन्द जी (तब ब्रह्मचारी तेजचैतन्य) को स्वप्न में दर्शन देकर रायपुर में कार्य करने का संकेत किया। वहाँ से आकर उन्होंने रायपुर में आश्रम स्थापित किया। उसके बाद नारायणपुर, बिलासपुर, भिलाई, भोपाल, इन्दौर, ग्वालियर, जबलपुर में और बिहार और उड़िसा में आश्रम आरम्भ करने में महती भूमिका निभाई।

लगभग २ बजे साधु-भंडारा हुआ, जिसमें साधुओं को बैग, घड़ी, वस्त्र, प्रणामी आदि समर्पित किया गया। द्वितीय और तृतीय सत्र २.३० बजे से ५.३० बजे तक चला। द्वितीय सत्र की अध्यक्षता स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने की थी। वक्ता थे स्वामी राघवेन्द्रानन्द जी और डॉ. लक्ष्मण प्रसाद मिश्र जी। तृतीय सत्र की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के सह-सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने की। वक्ता थे स्वामी निर्विकारानन्द जी और डॉ. अवधेश प्रधान जी। सन्ध्या ६.१५ बजे नव-निर्मित मन्दिर में श्रीरामकृष्ण देव की आरती हुई। ७ बजे से हैदराबाद की श्रीमती सुदेषणा गुप्ता ने बड़ी भावपूर्ण और सरस भक्तिमय भजनों की प्रस्तुति की। पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने स्मृति-चिह्न, बैग और घड़ी प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया।

३० जनवरी, गुरुवार को बसन्त पंचमी थी। आज नये मन्दिर में प्रात: ५.३० बजे मंगल आरती हुई। ९ बजे विद्या की देवी सरस्वती की मूर्ति-पूजा हुई। आज का प्रथम सत्र १० बजे प्रारम्भ हुआ और लगभग ११.३० तक चला। यह दिवस सरस्वती-सारदा-चिन्तन हेतु समर्पित था। इस सत्र के अध्यक्ष थे – रामकृष्ण मठ-मिशन के वरिष्ठ न्यासी स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज। वक्ता थे स्वामी मेधजानन्द जी और विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी। द्वितीय सत्र लगभग १२.३० बजे प्रारम्भ हुआ २ बजे तक चला। इसके अध्यक्ष थे रामकृष्ण मठ-मिशन, बेलूड़ मठ के सह-महासचिव स्वामी तत्त्वविदानन्द जी महाराज और वक्ता थे – रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर के सचिव स्वामी आत्मश्रद्धानन्द जी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की संस्कृत विभाग की प्रोफेसर डॉ. सुचित्रा मित्रा। २ बजे से ३ बजे तक भोजन और विश्राम था। तीसरा और अन्तिम सत्र ३ से ४ बजे तक था। इसमें वरिष्ठ संन्यासियों के द्वारा भक्तों के प्रश्नों के उत्तर प्रदान किए गए।

समापन समारोह – ४ से ५.३० बजे तक समापन समारोह सत्र था। इस समारोह के अध्यक्ष स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज थे। मुख्य अतिथि थे रामकृष्ण मिशन औरंगाबाद के सचिव स्वामी विष्णुपादानन्द जी महाराज और विशिष्ट अतिथि थे श्री शैलेन्द्र शुक्ल जी, अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ राज्य पावर कम्पनीज, रायपुर। सभी सत्रों में विद्वान और संन्यासी वक्ताओं ने अनुपम व्याख्यान दिए।

विभिन्न सत्रों में कई लोगों ने मंच-संचालन और धन्यवाद ज्ञापन किया। कई कलाकारों ने – विभिन्न सत्रों में रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी के स्वामी कृपाकरानन्द जी ने शास्त्रीय संगीत, विवेकानन्द विद्यापीठ के संगीत शिक्षक कैलास यादव ने विवेकानन्द लीलागीति, मुम्बई से आए विद्यापीठ के पूर्व छात्र अनुपम वर्मन् ने भजन और रायपुर के चेतन देवांगन ने पड़वानी प्रस्तुत किये। भगवान श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द जी और माँ सरस्वती देवी के जय, 'पूर्णमद:' शान्ति

मन्त्र के साथ यह त्रिदिवसीय समारोह सम्यक् सुसम्पन्न हुआ। इसमें सम्पूर्ण भारत से लगभग १३०० लोगों ने भाग लिया और मन्दिर में जप-ध्यान और सत्संग कर एक दिव्य आध्यात्मिक परिवेश का निर्माण किया।

रामकृष्ण विवेकानन्द सेवा समिति, बालाघाट के द्वारा कई कार्यक्रम आयोजित हुए। २२ नवम्बर, २०१९ को ६.३० बजे नगरपालिका परिसर हाल में भक्तों को, २३ नवम्बर को ११ बजे केशव स्कूल में, २४ नवम्बर को प्रात: ८ बजे सेवा भारती वनवासी छात्रावास में बच्चों को स्वामी तन्मयानन्द जी ने व्याख्यान दिया। २४ नवम्बर को ३ बजे साईं मैरिज लान, वारासिवनी में उन्होंने भजन गाया। २८ दिसम्बर, २०१९ को सन्ध्या ६ बजे स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने 'मंगल भवन' में भक्तों को और २९ दिसम्बर को १०.३० बजे पुलिस लाइन कोचिंग सेन्टर में प्रतियोगी छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया।